॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ 2042

गीताव्याकरणम्



गीताप्रेस, गोरखपुर



॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ 2042

गीताव्याकरणम्

लेखक—

श्रीदीवानचन्द्र शास्त्री, बी० ए०,

भूतपूर्व संस्कृताध्यापक,

गवर्नमेंट हाईस्कूल, गुरदासपुर

सम्पादक—

श्रीगौरीशङ्कर एम्० ए०, बी० लिट् (आक्सन),

पी० ई० एस (रिटायर्ड)

भूतपूर्व प्रिंसिपल,

गवर्नमेंट कालेज, धर्मशाला (कांगडा)

तथा—

आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी,

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

गीताप्रेस, गोरखपुर

2042 Gita Vaikranam_Section_1_Front

सं० २०७४ पाँचवाँ पुनर्मुद्रण २,०००
कुल मुद्रण १६,०००

❖ मूल्य— ₹ ४०
(चालीस रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५० ; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
web : gitapress.org e-mail : booksales@gitapress.org
गीताप्रेस प्रकाशन gitapressbookshop. in से online खरीदें।

निवेदन

इस व्याकरणके लिखनेका उद्देश्य केवल इतना ही है कि संस्कृत-व्याकरणकी हिंदी माध्यमद्वारा ज्ञानोपलब्धिके साथ-साथ श्रीमद्भगवद्गीताके स्वाध्यायमें भी सहायता प्राप्त हो। संस्कृत-व्याकरण-पद्धतिमें कोई भी मौलिकता लाना असम्भव है। हाँ, विषयके प्रतिपादनमें कुछ नवीनता लायी जा सकती है। व्याकरण-शास्त्रका जितना सूक्ष्म और विस्तृत अध्ययन संस्कृत भाषामें हुआ है, उतना अन्य किसी भाषामें नहीं। पाणिनिके ग्रन्थकी वैज्ञानिक विवेचनाकी परिपूर्णता तथा शैलीकी अनुपमता व्याकरण-शास्त्रमें अद्वितीय है। पाणिनीय अष्टाध्यायीका अनुसरण करते हुए काशिकाकार, भट्टोजिदीक्षित तथा वरदराज विषय-प्रतिपादनमें अपने-अपने ढंगकी नवीनता लानेमें समर्थ हुए हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें श्रीवरदराजकी पद्धतिका अनुसरण करते हुए श्रीमद्भगवद्गीताके प्रयोगोंसे पाणिनीय शैलीके आधारपर संस्कृत-व्याकरण समझने तथा समझानेका प्रयास किया गया है। सम्पादनका सिद्धान्त है कि संस्कृत-व्याकरण पाणिनीय पद्धतिसे सुगमतापूर्वक सीखा जा सकता है, अतः यहाँ उसी शैलीका अनुसरण किया गया है।

इस पुस्तकको प्रस्तुत रूपमें लानेकी प्रेरणा आजसे दस वर्ष पूर्व स्वर्गीय स्वामी श्रीरामानन्दजीद्वारा प्राप्त हुई थी। इस प्रोत्साहनको कार्यरूपमें परिणत करनेका भार पं० श्रीदीवानचन्द्रजी शास्त्री, बी० ए० ने उठाया। उन्होंने बड़े परिश्रमसे वरदराजकृत लघुसिद्धान्तकौमुदीके क्रमानुसार इस पुस्तकको प्रस्तुत किया,

जिसमें शब्द, प्रयोग तथा उदाहरण श्रीमद्भगवद्गीतासे उद्धृत किये गये हैं। श्रीउत्तमचन्द्र शास्त्रीने इस पुस्तकको प्रस्तुत रूपमें देखा और समय-समयपर अपनी लाभदायक सम्मति दी। उदाहरण-सामग्री जुटानेमें श्रीअमरनाथ शास्त्री व्याकरणाचार्यने सहयोग दिया। तदनन्तर श्रीमदनमोहन शास्त्री वेदाचार्य, एम० ए० विशेष उल्लेख तथा आभारके पात्र हैं, जिन्होंने इस पुस्तकका मुद्रणसे पूर्व पर्यालोचन किया और अनेक उपकारक सुझाव दिये।

उद्देश्य यह था कि पाणिनीय पद्धतिके अनुसार श्रीमद्भगवद्-गीताको व्याकरणकी दृष्टिसे देखा जाय, जिससे शब्दार्थ-ज्ञानमें सरलता और सत्यता आ सके। लिखा भी है 'सत्यदेवाः स्याम, इत्यध्येयं व्याकरणम्।' गीताशास्त्रके सत्यार्थ जाननेमें व्याकरणके ज्ञानकी आवश्यकता है। इस पुस्तकद्वारा यह उद्देश्य कहाँतक सफल हो पाया है—इसका प्रमाण पाठक ही दे सकेंगे।

प्रस्तुत पुस्तकके पाठ्य-विषयको अठारह (१८) प्रकरणोंमें रखा गया है, जिस संख्याका आधार गीताके अध्यायों, महाभारतके पर्वों, अक्षौहिणी सेनाओं तथा महाभारत युद्धके दिनोंकी संख्या ही है। सम्पादककी आशा तो यह है कि गीताका पारायण करनेवाले अधिकसे अधिक अठारह दिनों या पक्षोंमें, नहीं तो अठारह महीनोंमें ही सही, संस्कृत भाषाका पाणिनीय पद्धतिद्वारा सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकें, जिससे गीताके शब्दों और उनके अर्थोंका सत्यज्ञान प्राप्त हो और वे गीताका पाठ व्याकरणकी सहायतासे अर्थसहित करनेमें समर्थ हों।

अन्तमें मैं पुनः पं० श्रीदीवानचन्द्रजी शास्त्रीका विशेष आभारी हूँ, जिनके शुभ प्रयत्नसे यह पुस्तक पाठकोंके सामने उपस्थित हो सकी है।

गीताप्रेस गोरखपुरके अध्यक्ष महानुभाव कृतज्ञताके पात्र हैं कि उन्होंने गीताव्याकरणको अपने प्रकाशनमें स्वीकृत करके गीताप्रेमी जनताका आभार बताया है। भारतवर्षमें जो कुछ भी गीतापर लिखा जाय उसपर अधिकार उनका होना चाहिये और इसी कारण यह कृष्णार्पण प्रयासरूपी गीताव्याकरण उनकी ही भेंटमें पुरस्कृत किया जाता है। आशा है गीता और संस्कृतके प्रेमी सज्जन गीताप्रेसकी इस देनसे पूर्ण लाभ उठायेंगे। ''मुखं व्याकरणम् प्रोक्तम्'' और गीता तो ''भारतसर्वस्व'' है ही—दोनोंके एकीकरणका यह यत्न सफल बनानेमें गीताप्रेसने सर्वोत्तम प्रयत्न किया है, जिसका मैं हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
गीताभवन, कुरुक्षेत्र,
२२-४-५९ तदनुसार
चैत्र पूर्णिमा, संवत् २०१६

इति विनिवेदयति विदुषां वशंवदः
गौरीशङ्कर



॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीसरस्वत्यै नमः॥

गीताव्याकरणम्

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥
येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः॥

अक्षररूपी वेदको भगवान् शंकरसे प्राप्तकर सम्पूर्ण व्याकरणको कहनेवाले पाणिनीजीको नमस्कार है।

अज्ञानको दूर करनेवाले, मनुष्योंकी वाणीको शब्दरूपी जलसे पवित्र करनेवाले पाणिनीजीको नमस्कार है।

अथ संज्ञाप्रकरणम्

आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचावकाशे महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म। (पतञ्जलिः, म.भा. १—११)

अथ चतुर्दशसूत्राणि

१-अइउण् २-ऋलृक् ३-एओङ् ४-ऐऔच् ५-हयवरट् ६-लण् ७-ञमङणनम् ८-झभञ् ९-घढधष् १०-जबगडदश् ११-खफछठथचटतव् १२-कपय् १३-शषसर् १४-हल्।

ये माहेश्वर सूत्र 'अण्' आदि प्रत्याहारोंकी सिद्धिके लिये हैं। इनके अन्तिम वर्ण 'इत्' संज्ञक हैं।

१५ हलन्त्यम् १। ३। ३॥

उपदेशेऽन्त्यं हल् 'इत्' स्यात्।
उपदेशमें[1] अन्तिम हल् 'इत्' संज्ञक होता है।

१६ तस्य लोपः १। ३। ९॥

इत्संज्ञकस्य लोपः स्यात्।
'इत्' संज्ञकका लोप[2] होता है।

---

१. आचार्योंका आदि उच्चारण 'उपदेश' होता है।

२. अदर्शनको 'लोप' कहते हैं।

१७ आदिरन्त्येन सहेता १। १। ७१॥

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्।

अन्तिम 'इत्' के साथ उच्चरित आदि वर्ण मध्यगत वर्णोंका और अपना बोधक होता है। जैसे—'अण्' अ इ उ वर्णोंका बोधक है। एवम्—

अक् = अ इ उ ऋ ऌ

इक् = इ उ ऋ ऌ

अच् = अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ

यण् = य व र ल

अट् = अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र

अन्यप्रत्याहाराः

अण्	उक्	चय्	झल्	रल्
अम्	एङ्	खर्	झष्	शर्
अल्	एच्	चर्	मय्	शल्
अश्	ऐच्	जश्	यम्	हश्
इण्	खय्	झय्	यर्	हल्

१८ ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः १। २। २७॥

उ ऊ ऊ३ इत्युच्चारणकालोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुत-संज्ञः स्यात्।

एक मात्रिक, द्विमात्रिक एवं त्रिमात्रिक जो उकार, उस उकारके समान उच्चारणकाल है जिस 'अच्'का उस अच्की क्रमशः 'ह्रस्व', 'दीर्घ', 'प्लुत'-संज्ञा होती है।

१९ मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १। १। ८॥

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्।

मुखसहित नासिकासे उच्चार्यमाण वर्ण 'अनुनासिक' संज्ञावाला होता है।

२० तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १। १। ९॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्।

जिस वर्णके तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न—ये दोनों समान हों, वे परस्पर 'सवर्ण' संज्ञावाले होते हैं।

अथ स्थानानि

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।

अकार, कवर्ग, हकार तथा विसर्ग—इनका उच्चारण स्थान 'कण्ठ' है।

इचुयशानां तालु।

इकार, चवर्ग, यकार तथा शकार—इनका उच्चारण स्थान 'तालु' है।

ऋटुरषाणां मूर्धा।

ऋकार, टवर्ग, रकार तथा षकार—इनका उच्चारण स्थान 'मूर्धा' है।

लृतुलसानां दन्ताः।

लृकार, तवर्ग, लकार तथा सकार—इनका उच्चारण स्थान 'दन्त' है।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ।

उकार, पवर्ग, उपध्मानीय (ᳶ प ᳶ फ)—इनका उच्चारण स्थान 'ओष्ठ' है।

ञमङणनानां नासिका च।

ञ, म, ङ, ण, न—इनका उच्चारण स्थान 'नासिका' भी है।

एदैतोः कण्ठतालु।

ए और ऐ का उच्चारण स्थान 'कण्ठतालु' है।

ओदौतोः कण्ठोष्ठम्।

ओ और औ का उच्चारण स्थान 'कण्ठोष्ठ' है।

वकारस्य दन्तोष्ठम्।

वकारका उच्चारण स्थान 'दन्तोष्ठ' है।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्

जिह्वामूलीयका उच्चारण स्थान 'जिह्वामूल' है।

अनुस्वारस्य नासिका।

अनुस्वारका उच्चारण स्थान 'नासिका' है।

अथ प्रयत्नाः

प्रयत्न दो प्रकारके हैं—आभ्यन्तर[1] और बाह्य[2]।

'आभ्यन्तर' प्रयत्नके पाँच भेद हैं—

१ स्पृष्ट—'क' से 'म' तक २५ वर्णोंका 'स्पृष्ट' प्रयत्न है।

२ ईषत्स्पृष्ट—'अन्तःस्थ' (य, र, ल, व) वर्णोंका ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है।

३ ईषद्विवृत—ऊष्मवर्णों (श, ष, स, ह) का 'ईषद्विवृत' प्रयत्न है।

४ विवृत—स्वरोंका विवृत प्रयत्न होता है।

५ संवृत—ह्रस्व 'अ' का 'संवृत' प्रयत्न है।

आभ्यन्तरप्रयत्नचित्रम्

स्पृष्टम्	ई. स्पृ०	ई.वि०	विवृतम्	संवृतम्
क च ट त प	य	श	अ ए	प्रयोग या
ख छ ठ थ फ	र	ष	इ ओ	उच्चारण-
ग ज ड द ब	ल	स	उ ऐ	कालमें
घ झ ढ ध भ	व	ह	ऋ औ	ह्रस्व 'अ'
ङ ञ ण न म			लृ	

१. कण्ठके अंदर उच्चारणके लिये प्रयत्न।

२. कण्ठके ऊपर मुखमें ओठोंतक उच्चारणके लिये प्रयत्न।

'बाह्य' प्रयत्नके ग्यारह भेद हैं—

विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित।

(क) 'खर्' वर्णोंके 'विवार-श्वास-अघोष' प्रयत्न हैं।

(ख) 'हश्' वर्णोंके 'संवार-नाद-घोष' प्रयत्न हैं।

(ग) वर्गोंके प्रथम-तृतीय-पञ्चम वर्णों तथा यण्का 'अल्पप्राण' प्रयत्न है।

(घ) वर्गोंके द्वितीय-चतुर्थ और 'शल्' वर्णोंका 'महाप्राण' प्रयत्न है।

(ङ) स्वरोंके उदात्त, अनुदात्त और स्वरित प्रयत्न हैं।

बाह्यप्रयत्नचित्रम्

विवार-श्वास अघोष	संवार-नाद-घोष	अल्पप्राण	उदात्त-अनु-दात्त-स्वरित	महाप्राण
खर्	हश्			
क ख श	ग घ ङ ह	क ग ङ य	अ ए	ख घ श
च छ ष	ज झ ञ य	च ज ञ व	इ ओ	छ झ ष
ट ठ स	ड ढ ण र	ट ड ण र	उ ऐ	ठ ढ स
त थ	द ध न ल	त द न ल	ऋ औ	थ ध ह
प फ	ब भ म व	प ब म	लृ	फ भ

उदात्तानुदात्तस्वरिताः

२१ उच्चैरुदात्तः १। २। २९॥

तालु आदि स्थानोंके ऊर्ध्वभागमें निष्पन्न 'अच्' की 'उदात्त' संज्ञा होती है।

२२ नीचैरनुदात्तः १। २। ३०॥

तालु आदि स्थानोंके अधोभागमें निष्पन्न 'अच्' की 'अनुदात्त' संज्ञा होती है।

२३ समाहारः स्वरितः १। २। ३१॥

जिसमें उदात्तत्व और अनुदात्तत्व इन दोनों वर्णधर्मोंका समाहार हो, वह अच् 'स्वरित' संज्ञक होता है।

२४ परः संनिकर्षः संहिता १। ४। १०९॥

वर्णानामतिशयसंनिधिः संहितासंज्ञः स्यात्।

वर्णोंके अतिशय समीपताकी 'संहिता' संज्ञा होती है।

२५ हलोऽनन्तराः संयोगः १। १। ७॥

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञा स्युः।

अचोंके व्यवधानसे रहित हलोंकी 'संयोग' संज्ञा होती है।

२६ सुप्तिङन्तं पदम् १। ४। १४॥

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

सुबन्त और तिङन्तकी 'पद' संज्ञा होती है।

इति संज्ञाप्रकरणम्

स्वरसंधिः (अच्संधिः)

दो स्वरोंकी सन्धिको 'स्वर-सन्धि' या 'अच्सन्धि' कहते हैं। स्वर-सन्धिके मुख्य भेद निम्न हैं—

१ यण्, २ अयादि, ३ गुण, ४ वृद्धि, ५ दीर्घ, ६ पूर्वरूप, ७ पररूप।

यण्संधिः

इ	उ	ऋ	ऌ
य्	व्	र्	ल्

२७ इको यणचि ६। १। ७७॥

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायाम्।

'इक्' के स्थानमें 'यण्' होता है 'अच्' परे होनेपर संहिताके विषयमें।

२८ स्थानेऽन्तरतमः १। १। ५०॥

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात्।

अनेक वर्णोंकी प्राप्ति होनेपर अत्यन्त सदृश आदेश हो।

(क) इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

(गीता ३। ४२)

पराणि + आहुः = पराण्याहुः।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् (१। १०)

अपरि + आप्तम् = अपर्याप्तम्।

अज्झीनं वर्णं परेण संयोज्यम् (वा०)।

अच्हीन वर्णको पर वर्णसे जोड़ देना चाहिये।

(ख) न कर्मस्वनुषज्जते। (६। ४) कर्मसु + अनुषज्जते।

(ग) कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे। (११। ३७)

कर्तृ + ए = कर्त्रे।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः। (२। ६९)

जागृ + अति = जाग्रति। जाग्रतः (६। १६) जागृ + अतः।

अयादिसंधिः

ए	ओ	ऐ	औ
अय्	अव्	आय्	आव्

२९ एचोऽयवायावः ६। १। ७८॥

एचः क्रमात् 'अय्, अव्, आय्, आव्' एते स्युरचि।

एचोंको क्रमसे 'अय्, अव्, आय्, आव्' आदेश होते हैं 'अच्' परे होनेपर।

३० यथासंख्यमनुदेशः समानाम् १। ३। १०॥

समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्।

समानसे सम्बन्ध रखनेवाली विधि यथासंख्यतासे हो।

यथा—

(क) एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः। (४। २)

राजर्षे + अस् = राजर्ष् + अय् + अस् = राजर्षयः।

(ख) विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे० (४। १)

मनो + ए = मनवे। इक्ष्वाको + ए = इक्ष्वाकवे।

(ग) नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते। (१। ७)

नै + अकाः = न् + आय् + अकाः = नायकाः।

(घ) द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। (१५। १६)

द्वौ + इमौ = द्व्+ आव् + इमौ = द्वाविमौ।

गुणसंधिः

३१ अदेङ् गुणः १। १। २॥

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्।

'अत्' (अ*) और 'एङ्' की 'गुण' संज्ञा होती है।

३२ आद्गुणः ६। १। ८७॥

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्।

अवर्णसे 'अच्' परे होनेपर पूर्व-परके स्थानमें 'गुण' रूप एकादेश होता है। यथा—

---

* ऋ-लृके स्थानपर जो 'अ' गुण और 'आ' वृद्धि होती है, वह प्रयोगमें क्रमशः 'अर् अल्' और 'आर् आल्' के रूपमें परिणत हो जाते हैं।

(क) यत्र योगेश्वरः कृष्णः। (१८। ७८)
योग+ईश्वरः=योग्+ए+श्वरः=योगेश्वरः।
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। (३। २१)
एव+इतरः=एव्+ए+तरः=एवेतरः।

(ख) एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् (१। ४७)
रथ+उपस्थे=रथ्+ओ+पस्थे=रथोपस्थे।

(ग) यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। (२। १५)
पुरुष+ऋषभ=पुरुष्+अर्+षभ=पुरुषर्षभ।

वृद्धिसंधिः

३३ वृद्धिरादैच् १। १। १॥

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात्।

'आत्' (आ) और 'ऐच्' की 'वृद्धि' संज्ञा होती है।

३४ वृद्धिरेचि ६। १। ८८॥

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्।

अवर्णसे 'एच्' परे हो तो पूर्व-परके स्थानमें 'वृद्धि' रूप एकादेश होता है।

(क) ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना। (४। २४)
ब्रह्म+एव=ब्रह्म्+ऐ+व=ब्रह्मैव।

(ख) उत्तमौजाश्च वीर्यवान्। (१। ६)
उत्तम+ओजाः=उत्तम्+औ+जाः=उत्तमौजाः।

दीर्घसंधिः

३५ अकः सवर्णे दीर्घः ६। १। १०१॥

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्।

'अक्' से सवर्ण 'अच्' परे रहते पूर्व-परके स्थानमें 'दीर्घ'

रूप एकादेश होता है। यथा—

(क) कार्याकार्ये भयाभये। (१८। ३०)

कार्य+अकार्ये=कार्याकार्ये, भय+अभये=भयाभये।

फल+आकाङ्क्षी=फलाकाङ्क्षी (१८। ३४)

(ख) सर्वाणि+इन्द्रियकर्माणि=सर्वाणीन्द्रियकर्माणि (४। २७)

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्। (६। २१)

अति+इन्द्रियम्=अतीन्द्रियम्।

उत्क्रामति+ईश्वरः=उत्क्रामतीश्वरः (१५। ८)

(ग) बहु+उदरम्=बहूदरम् (११। २३)

पूर्वरूपसंधिः

३६ एङः पदान्तादति ६। १। १०९॥

पदान्ताद् एङोऽतिपरे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्।

पदान्त 'एङ्' से 'अत्' परे हो तो पूर्व-परके स्थानमें 'पूर्वरूप' एकादेश होता है। यथा—

(क) प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः (७। ३०)

प्रयाणकाले+अपि=प्रयाणकालेऽपि।

ते+अभिहिता=तेऽभिहिता (२। ३९)

(ख) स शब्दस्तुमुलोऽभवत्। (१। १३)

तुमुलो+अभवत्=तुमुलोऽभवत्।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः। (२। १६)

दृष्टो+अन्तः=दृष्टोऽन्तः।

इत्यच्संधिः

व्यञ्जनसंधिः (हल्संधिः)

३७ स्तोः श्चुना श्चुः ८। ४। ४०॥

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः।

सकार-तवर्गको शकार-चवर्गके योगमें शकार-चवर्ग होते हैं। यथा—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्। (६। २६)

निस्+चरति=निश्चरति। मनस्+चञ्चलम्=मनश्चञ्चलम्।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन। (८। २७)

कस्+चन=कश्+चन=कश्चन।

कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय। (१८। ७२)

कत्+चित्=कच्+चित्=कच्चित्।

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्। (४। १६)

यद्+ज्ञात्वा=यज्+ज्ञात्वा=यज्ज्ञात्वा।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः। (६। १०)

युन्+जीत=युञ्+जीत=युञ्जीत।

३८ झलां जश् झशि ८। ४। ५३॥

झलां जश् स्याद् झशि परे।

'झलों' को 'जश्' होते हैं 'झश्' परे होनेपर। यथा—

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति। (४। ३९)

लभ्+ध्वा=लब्+ध्वा=लब्ध्वा।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। (४। १७)

बोध्+धव्यं=बोद्+धव्यं=बोद्धव्यम्।

तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्। (५। १६)

आदित्यवत्+ज्ञानम्=आदित्यवद्+ज्ञानम् आदित्यवज्+ज्ञानम् (सू० ३७ से 'द्' को 'ज्') आदित्यवज्ज्ञानम्।

३९ झलां जशोऽन्ते ८। २। ३९॥

पदान्ते झलां जशः स्युः।

पदान्तमें 'झलों' को 'जश्' होते हैं। यथा—

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः। (३। ८)

प्रसिद्ध्येत्+अकर्मणः=प्रसिद्ध्येद्+अकर्मणः=प्रसिद्ध्येदकर्मणः।

४० यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८। ४। ४५॥

यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात्।

पदान्त 'यर्' को अनुनासिक परे हो तो अनुनासिक विकल्पसे होता है। यथा—

प्रसीद देवेश! जगन्निवास! (११। ४५)

जगत्+निवास=जगन्+निवास=जगन्निवास।

षण्मासा उत्तरायणम्। (८। २४)

(षष्,) षड्+मासाः=षण्मासाः।

४१ खरि च ८। ४। ५५॥

खरि परे झलां चरः स्युः।

'खर्' परे हो तो झलोंको 'चर्' होते हैं। यथा—

छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत। (४। ४२)

छिद्+त्वा=छित्+त्वा=छित्त्वा।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्। (९। २७)

तद्+कुरुष्व=तत्+कुरुष्व=तत्कुरुष्व।

हृद्+स्थम्=हृत्+स्थम्=हृत्स्थम्। (४। ४२)

४२ झषस्तथोर्धोऽधः ८। २। ४०॥

झषः परयोस्तथोर्धः स्यात्, न तु दधाते।

'झष्' से परे 'त्' 'थ्' को 'ध्' होता है, परन्तु दधातिके 'त्' 'थ्' को नहीं। यथा—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। (४। १७)

बोध्+तव्यम्=बोध्+धव्यम्=बोद्धव्यम्।

रुध्+(क्) त्वा=रुध्+ध्वा=रुद्ध्वा। (४। २९)

बुध्+(क्तिन्)तिः=बुध्+धिः=बुद्धिः। (७। ४)

४३ झयो होऽन्यतरस्याम् ८। ४। ६२॥

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः।

'झय्' से परे 'ह्' को पूर्वसवर्ण विकल्पसे होता है। यथा—

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। (२। ३१)

धर्म्यात्+हि=धर्म्यात्+धि धर्म्याद्+धि=धर्म्याद्धि।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्। (६। ४२)

एतत्+हि=एतत्+धि एतद्+धि=एतद्धि।

४४ तोर्लि ८। ४। ६०॥

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः।

'तवर्ग' को 'लकार' परे होनेपर परसवर्ण होता है। यथा—

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति। (१३। १३)

श्रुतिमत्+लोके=श्रुतिमल्लोके।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। (४। ३९)

श्रद्धावान्+लभते=श्रद्धावाँल्लभते ('न'को अनुनासिक 'ल्')

सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणाम्। (१८। ७१)

शुभान्+लोकान्=शुभाँल्लोकान् ('न्' को अनुनासिक 'लँ्')

४५ चोः कुः ८। २। ३०॥

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च।

'झल्' परे रहनेपर अथवा पदके अन्तमें विद्यमान 'चवर्ग' को 'कवर्ग' होता है। यथा—

विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः। (५। २८)

मुच्+(क्तः) तः=मुक्तः।

४६ वाऽवसाने ८। ४। ५६॥

अवसाने झलां चरो वा स्युः।

अवसानमें (पदके अन्तमें) 'झलों' को विकल्पसे 'चर्' होते हैं। यथा—

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्। (९। १८)

सुहृद्=सुहृत्।

४७ व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ८। २। ३६॥

व्रश्चादीनां सप्तानां छशान्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्याज्झलि पदान्ते च।

व्रश्च आदि सात धातुओंके और छकारान्त एवं शकारान्त धातुओंके अन्तिम वर्णके स्थानपर 'षकार' आदेश होता है 'झल्' परे रहनेपर अथवा पदके अन्तमें।

४८ ष्टुना ष्टुः ८। ४। ४१॥

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात्।

सकार-तवर्गको षकार-टवर्गके योगमें षकार-टवर्ग होते हैं। यथा—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। (३। १०)

सृज्+(क्त्वा) त्वा (सू० ४७ से 'ज' के स्थानपर 'ष') सृष्+त्वा (सू० ४८ से 'त्' के स्थानपर 'ट्')=सृष्ट्वा।

प्रवेश्+तुम्=प्रवेष्+तुम्=प्रवेष्+टुम् प्रवेष्टुम्। (११। ५४)

कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय। (१८। ७२)।

प्रनश्+तः=प्रनष्+तः=प्रनष्+टः=प्रनष्टः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः। (२। १६)

दृश्+तः=दृष्+तः=दृष्+टः=दृष्टः।

४९ षढोः कः सि ८। २। ४१॥

षस्य ढस्य च कः स्यात् सकारे परे॥

'स' परे रहनेपर 'ष' और 'ढ' को 'क' हो जाता है। यथा—

अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि। (१८। ५८)

विनंश्+ष्यसि=(सू० ४७ से 'श्' को 'ष्') विनंष्+ष्यसि=(सू० ४९ से 'ष्' को 'क्') विनंक्+ष्यसि=('क्' 'ष्' को 'क्ष्') और (सू० ५३ से अनुस्वारको परसवर्णी 'ङ्' करके) विनङ्क्ष्यसि।

५० आदेशप्रत्यययोः ८। ३। ५९॥

इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशस्य प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशःस्यात्।

इण् और कवर्गसे परे अपदान्त आदेशका जो सकार तथा प्रत्ययका अवयवभूत जो सकार उसको मूर्धन्यादेश होता है।

यथा—

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्। (४। १६)

यथा—

मोच्+स्यसे=(सू० ४५ से 'च्' को 'क्') मोक्+स्यसे और सू० ५० से 'स्' को 'ष्' (क्+ष्+क्ष्) करके मोक्ष्यसे।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। (२। ३७)

यथा—

भोज्+स्यसे=(सूत्र ४५ से ज् को ग् तथा सूत्र ४१ से ग को क) भोक्+स्यसे=(सू० ५० से 'स्' को 'ष्') भोक्+ष्यसे=(क्+ष्=क्ष्) भोक्ष्यसे।

हनिष्ये चापरानपि। (१६। १४)

हनि+स्ये=हनिष्ये।

५१ मोऽनुस्वारः ८। ३। २३॥

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि परे।

मान्त पदको अनुस्वार होता है 'हल्' परे होनेपर। यथा—
तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः। (१। १२)
सम्+जनयन्=संजनयन्।
धनम्+जयः=धनंजयः। (१। १५)
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च। (१। ४२)
सम्+करः=संकरः।

५२ नश्चापदान्तस्य झलि ८। ३। २४॥

नस्यं मस्य चापदान्तस्य झलि परेऽनुस्वारः।

अपदान्त नकार और मकारको अनुस्वार होता है 'झल्' परे होनेपर। यथा—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। (२। २२)

वासान्+सि=वासांसि।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति। (११। ३६)
रक्षान्+सि=रक्षांसि।

५३ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८। ४। ५८॥

अनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णः स्यात्।

अनुस्वारसे 'यय्' परे होनेपर परसवर्ण होता है। यथा—
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्। (२। ६६)
शाम्+तिः=शान्तिः (सू० ५१ से अनुस्वार) शांतिः वा।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्॥ (११। ३३)

भुञ्ज+ष्व चोः कुः निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः, भुं ग् ष्व खरि च=भुं क् ष्व, अनुस्वारस्य ययि भुङ् क् ष्व क् ष् संयोगे क्षः=भुङ्क्ष्व।

५४ वा पदान्तस्य ८। ४। ५९॥

पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात्।

पदान्त अनुस्वारको 'यय्' परे होनेपर विकल्पसे परसवर्ण होता है। यथा—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय। (२। ४८)

धनम्+जय=धनंजय, अथवा धनञ्जय।

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप। (४। ३३)

परम्+तप=परंतप अथवा परन्तप।

५५ शश्छोऽटि ८। ४। ६३॥

झयः परस्य शस्य छो वाऽटि परे।

'झय्' से परे 'श्' को 'छ्' होता है विकल्पसे अट् परे होनेपर। यथा—

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य। (११। ३५)

एतत्+श्रुत्वा=(सू० ३७ से 'त्' को 'च्') एतच्+श्रुत्वा= एतच्छ्रुत्वा।

अत्युत्+श्रितम्=अत्युच्+श्रितम्=अत्युच्छ्रितम्। (६। ११)

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्। (१७। १०)

उत्+शिष्टम्=उच्+शिष्टम्=उच्छिष्टम्।

५६ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ८। ३। ३२॥

ह्रस्वात् परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो नित्यं ङमुट्।

ह्रस्वसे परे जो 'ङम्' तदन्त पदसे परे 'अच्' को नित्य 'ङमुट्' [ङुट्, णुट्, नुट्] का आगम होता है।

यथा—

सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते। (५। ७)

कुर्वन्+अपि=कुर्वन्+न्+अपि=कुर्वन्नपि।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा (४। ६)

सन्+अव्ययात्मा=सन्+न्+अव्ययात्मा=सन्नव्ययात्मा।

५७ नश्छव्यप्रशान् ८। ३। ७॥

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः स्यान्न तु प्रशान्शब्दस्य।

अम्परक 'छव्' परे होनेपर नान्त पदको 'रु' होता है न कि प्रशान् शब्दको। यथा—

कुर्याद् विद्वाँस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्। (३। २५)

विद्वान्+तथा=विद्वाँर्+तथा=विद्वाँः+तथा=विद्वाँस्तथा। (देखें सू० ६९, ६०)

कामान्+त्यक्त्वा=कामांर्+त्यक्त्वा=कामांः+त्यक्त्वा=कामांस्त्यक्त्वा। (६। २४)

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(२। ११)

प्रज्ञावादान्+च=प्रज्ञावादांर्+च=प्रज्ञावादांस्+च=प्रज्ञावादांश्+च=प्रज्ञावादांश्च।

अगतासून्+च=अगतासूंर्+च=अगतासूंः+च=अगतासूंस्+च अगतासूंश्+च=अगतासूंश्च। इसी प्रकार पुमान्+चरति=पुमांश्चरति। (२। ७१)

५८ छे च ६। १। ७३॥

ह्रस्वस्य छे परे तुक् स्यात्।

ह्रस्व से 'छ' परे होनेपर 'तुक्' का आगम होता है।

यथा—

एतन्मे संशयं कृष्णच्छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्यच्छेत्ता न ह्युपपद्यते॥

(६। ३९)

यथा—

कृष्ण+छेत्तुम्=कृष्ण+त्+छेत्तुम्=(सू० ३७ से 'त्' को 'च्') कृष्ण+च्+छेत्तुम्=कृष्णच्छेत्तुम्। इसी प्रकार-अस्य+छेत्ता=अस्यच्छेत्ता।

५९ पदान्ताद्वा ६। १। ७६॥

दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग्वा।

पदान्त दीर्घसे 'छ' परे हो तो 'तुक्' (त्) का आगम विकल्पसे होता है।

यथा—

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्रीच्छन्दसामहम्। (१०। ३५)

गायत्री+छन्दसाम्=गायत्री+त्+छन्दसाम्=(सू० ३७ से 'त्' को 'च') गायत्री+च्+छन्दसाम्=गायत्रीच्छन्दसाम् अथवा गायत्री छन्दसाम्।

इति हल्संधिः

अथ विसर्गसंधिः

६० विसर्जनीयस्य सः ८। ३। ३४॥

खरि।

विसर्गको 'स्' होता है 'खर्' परे होनेपर।

यथा—

सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः। (१८। २)

प्राहुः+त्यागम्=प्राहुस्+त्यागम्=प्राहुस्त्यागम्।

आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते। (३। १७)

संतुष्टः+तस्य=संतुष्टस्+तस्य=संतुष्टस्तस्य।

६१ वा शरि ८। ३। ३६॥

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा।

'शर्' परे होनेपर विसर्गको विसर्ग विकल्पसे होता है।

यथा—

यतयः+संशितव्रताः (४। २८) अथवा यतयस्संशितव्रताः।

जिस पक्षमें विसर्ग नहीं होगा, वहाँ विसर्गको प्राप्त सकार

ही होता है। 'स्' को चवर्गके योगमें 'श्', टवर्गके योगमें 'ष्' और 'स्' के योगमें 'स्' ही रहता है। यथा—

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः। (११। २०)

दिशः+च=दिशस्+च=दिशश्+च=दिशश्च।

अतः+च्यवन्ति=अतस्+च्यवन्ति=अतश्=च्यवन्ति=अतश्च्यवन्ति। (९। २४)

६२ ससजुषो रुः ८। २। ६६॥

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात्।

पदान्त सकार और सजुष् शब्द (के षकार) को 'रु' होता है।

६३ अतो रोरप्लुतादप्लुते ६। १। ११३॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति।

अप्लुत 'अत्' से परे 'रु' को 'उ' होता है अप्लुत 'अत्' परे होनेपर।

यथा—

जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्। (१०। ३६)

जयस्+अस्मि=('स्' को 'रु') जय+रु+अस्मि=जय+उ+अस्मि=(सू० ३२ से गुण) जयो+अस्मि=(सू० ३६ से पूर्वरूप) जयोऽस्मि। इसी प्रकार व्यवसायोऽस्मि।

६४ हशि च ६। १। ११४।

अप्लुतादतो रोरुः स्याद्धशि।

अप्लुत 'अत्' से परे 'रु' को 'उ' होता है 'हश्' परे हो तो।

यथा—

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व

जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्। (११। ३३)

यशस्+लभस्व=यशो लभस्व।

राजर्षयस्+विदुः=राजर्षयो विदुः। (४। २)

योगो नष्टः परंतप। (४। २) योगस्+नष्टः=योगो नष्टः।

६५ रो रि ८। ३। १४॥

रेफस्य रेफे परे लोपः।

रकार परे होनेपर 'र्' का लोप होता है।

यथा—

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्। (१। ४६)

धार्तराष्ट्रार्+रणे=धार्तराष्ट्रा रणे।

६६ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ८। ३। १७॥

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि।

भो, भगो, अघो तथा 'अ' पूर्वक 'रु' को 'य्' होता है 'अश्' परे हो तो।

६७ हलि सर्वेषाम् ८। ३। २२॥

भोभगोअघोअपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि।

भो, भगो, अघो, अपूर्वक 'य्' का लोप होता है 'हल्' परे हो तो।

यथा—

गुणास्+वर्तन्ते=गुणा वर्तन्ते (१४। २३)।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। (५। २२)

संस्पर्शजास्+भोगाः=संस्पर्शजा भोगाः।

६८ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६। १। १३२॥

अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे।

ककाररहित 'एतद्' और 'तद्' शब्दके 'सु' का लोप होता है 'हल्' परे हो तो; किंतु नञ्समासमें नहीं। यथा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। (३। ३७)

एषस्+क्रोधः=एष क्रोधः।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्। (१। १९)

सस्+घोषः=स घोषः।

६९ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८। ३। १५॥

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः।

'खर्' परे होनेपर अथवा अवसानमें 'रेफ' को विसर्ग होता है। यथा—

समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते। (४। २२)

समस्+सिद्धौ=समः सिद्धौ। ब्रह्मणः पथि (६। ३८)। शब्दः खे (७। ८)। अधियज्ञः कथम् (८। २)। इसी प्रकार विमत्सरः (४। २२)। करोति सः (४। २०)—यहाँ पदान्तमें 'र्' को विसर्ग हुए हैं।

७० र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८। २। ७६॥

रेफवान्तयोर्धात्वोरुपधाया इको दीर्घः स्यात्पदान्ते।

रेफ (रान्त) तथा वान्त धातुकी उपधाके 'इक्' को दीर्घ होता है पदान्तमें।

यथा—

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः। (३। ३०)

निराशिस्+निर्ममः=निराशीर्निर्ममः।

७१ इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य ८। ३। ४१॥

इकारोकारोपधस्याप्रत्ययस्य विसर्गस्य षः स्यात्कुप्वोः।

इकार-उकार-उपधावाले प्रत्ययभिन्न विसर्गको कवर्ग और पवर्ग परे होनेपर 'ष्' होता है।

यथा—

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। (३। ४)

निः+कर्म=निष्कर्म, तस्य भावो नैष्कर्म्यम्।

निः+कृतिः=निष्कृतिः, तस्य भावो नैष्कृतिकः। (१८। २८)

७२ सोऽपदादौ ८। ३। ३८॥

विसर्जनीयस्य सः स्यादपदाद्योः कुप्वोः परयोः।

पदादिभिन्न कवर्ग अथवा पवर्गके परे रहते विसर्ग को 'स' होता है।

यथा—

अतपः+काय=अतपस्काय (१८। ६७)।

७३ रोऽसुपि ८। २। ६९॥

अह्नो रेफादेशो न तु सुपि।

'अहन्' शब्दको रेफादेश होता है 'सुप्' परे न होनेपर।

यथा—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे। (८। १८)

अहन्+आगमे=अहर्+आगमे=अहरागमे।

रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम् (वार्तिक)

रूप, रात्रि तथा रथन्तर शब्द परमें हो तो 'अहन्' शब्दके 'न्' को 'रु' हो जाता है।

यथा—

अहोरात्रविदः (८। १७)—अहन्+रात्रविदः=अह+रु+रात्रविदः= अह+उ+रात्रविदः=अहोरात्रविदः।

इति विसर्गसंधिः

अथ षड्लिङ्गेषु अजन्तपुँल्लिङ्गाः

७४ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १। २। ४५॥

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्।

धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्तको छोड़कर अर्थवान् शब्दस्वरूप 'प्रातिपदिक' संज्ञक होता है।

७५ कृत्तद्धितसमासाश्च १। २। ४६॥

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः।

कृदन्त, तद्धितान्त तथा समास 'प्रातिपदिक' संज्ञक होते हैं।

७६ स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् ४। १। २॥

'सुप्' प्रत्ययोंका विभक्तिके रूपमें प्रयोग।

प्रथमा	सु	औ	जस्।
द्वितीया	अम्	औट्	शस्।
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्।
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्।
पञ्चमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्।
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्।
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्।

सु के 'उ', जस्के 'ज्' शस्के 'श्', ङे, ङसि, ङस्, ङिके 'ङ्' टा के 'ट्', औट्के 'ट्', और सुप्के 'प्'का लोप होता है।

७७ विभक्तिश्च १। ४। १०४॥

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः।

'सुप्' और 'तिङ्' 'विभक्ति' संज्ञक होते हैं।

७८ ङ्याप्प्रातिपदिकात् ४। १। १॥

७९ प्रत्ययः ३। १। १॥

८० परश्च ३। १। २॥

ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः।

ङ्यन्त, आबन्त तथा प्रातिपदिकसे परे 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं।

८१ सुपः १। ४। १०३॥

सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचन—बहुवचनसंज्ञानि स्युः।

सुप्‌के जो तीन-तीन त्रिक उनकी क्रमसे एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन संज्ञाएँ होती हैं।

८२ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १। ४। २२॥

एकत्वविवक्षायामेकवचनं द्वित्वविवक्षायां द्विवचनं स्यात्।

एकत्वकी विवक्षामें 'एकवचन' और द्वित्वकी विवक्षामें 'द्विवचन' होता है।

८३ बहुषु बहुवचनम् १। ४। २॥।

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनम्।

बहुत्वकी विवक्षामें बहुवचन होता है।

['राम' शब्दकी निष्पत्ति]

(क) राम+सु ऐसी स्थितिमें 'सु' में से 'उ' का लोप करके 'रामस्' रूप बना। फिर 'स्' को सू० ६२ से 'र्' और फिर 'र्' को सू० ६९ से विसर्ग करके 'रामः' रूप निष्पन्न हुआ।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्। (१०। ३१)

राम+औमें सू० ३४ से वृद्धि करके 'रामौ' रूप निष्पन्न हुआ।

राम+जस्‌में 'ज्' का लोप करके राम+अस्, पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्व तथा विसर्ग करनेपर 'रामाः' रूप निष्पन्न हुआ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा विभक्ति-	रामः	रामौ	रामाः

(ख) राम+अम्—इस स्थितिमें—

८४ अमि पूर्वः ६। १। १०७॥

अकोऽम्यचि परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्।

'अक्' से 'अम्' सम्बन्धी 'अच्' परे होनेपर 'पूर्वरूप' एकादेश होता है। इस सूत्रसे पूर्वरूप होकर 'रामम्' रूप निष्पन्न हुआ। 'रामौ' पूर्ववत्।

राम+शस् इस स्थितिमें—

८५ लशक्वतद्धिते १। ३। ८॥

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतःस्युः। इति शसः शस्येत्संज्ञा।

तद्धितको छोड़कर प्रत्ययके आदिमें ल, श, कवर्गकी इत् संज्ञा होती है।

'श्' का लोप तथा पूर्वसवर्णदीर्घ करके 'रामास्' निष्पन्न होनेपर—

८६ तस्माच्छसो नः पुंसि ६। १। १०३॥

पूर्वसवर्णदीर्घात् परो यः शसः सकारस्तस्य नः स्यात् पुंसि।

पूर्वसवर्णदीर्घसे परे जो 'शस्' का 'स्' उसे 'न्' होता है, पुँल्लिङ्गमें।

द्वितीया विभक्ति- रामम् रामौ रामान्

(ग) राम+टा इस स्थितिमें—

८७ टाङसिङसामिनात्स्याः ७। १। १२

अदन्ताट्टादीनामिनादयः स्युः।

अदन्त अङ्गसे परे टा, ङसि, ङस्को क्रमसे इन, आत्, स्य आदेश होते हैं।

राम+इन में गुण करके 'रामेन' होनेपर—

८८ अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८। ४। २॥

अट् कवर्गः पवर्ग आङ् नुम्-एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात्समानपदे।

अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इनका व्यस्त तथा यथासम्भव मिलितोंके व्यवधानमें भी 'र्' तथा 'ष्' से परे 'न्'को 'ण्' होता है।

इस सूत्रसे णत्व करके 'रामेण' रूप निष्पन्न हुआ।

८९ पदान्तस्य ७। ४। ३७॥

पदान्तस्य नस्य णो न स्यात्।

पदान्तमें 'न्'को 'ण्' नहीं होता।

इसीलिये 'रामान्' के 'न्' को 'ण्' नहीं हुआ।

राम+भ्याम्–इस स्थितिमें—

९० सुपि च ७। ३। १०२॥

यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घःस्यात्।

यञादि 'सुप्' परे रहनेपर अदन्त अङ्गको दीर्घ होता है।

इस सूत्रसे दीर्घ करके 'रामाभ्याम्' रूप निष्पन्न हुआ।

राम+भिस्–इस स्थितिमें—

९१ अतो भिस ऐस् ७। १। ९॥

अदन्तादङ्गाद् भिस ऐस् स्यात्।

अदन्त अङ्गसे 'भिस्' को 'ऐस्' होता है।

इस सूत्रसे राम+ऐस् फिर 'वृद्धि' करके 'रामैः' रूप निष्पन्न हुआ।

तृतीया विभक्ति- रामेण रामाभ्याम् रामैः

(घ) राम+ङे—इस स्थितिमें—

९२ ङेर्यः ७। १। १३॥

अतोऽङ्गात् परस्य ङेर्यादेशः स्यात्।

अदन्त अङ्गसे परे 'ङे' को 'य' आदेश होता है।

इस सूत्रसे राम+य ऐसी स्थिति होनेपर सू० ९० से दीर्घ

करके 'रामाय' रूप निष्पन्न हुआ। 'रामाभ्याम्' पूर्ववत्।

राम+भ्यस्—इति स्थिते—

९३ बहुवचने झल्येत् ७। ३। १०३॥

झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः स्यात्।

झलादि बहुवचन 'सुप्' परे होनेपर अदन्त अङ्गको 'एकार' होता है।

इस सूत्रसे 'रामेभ्यस्' फिर रुत्व और विसर्ग करके 'रामेभ्यः' बना।

चतुर्थी विभक्ति- रामाय रामाभ्याम् रामेभ्यः

(ङ) राम+ङसि-इस स्थितिमें सू० ८७ से 'ङसि' के स्थानमें 'आत्' और फिर सवर्ण दीर्घ करके 'रामात्' रूप निष्पन्न हुआ। फिर सू० ३९ से जश्त्वद्वारा 'त्' को 'द्' करके तथा सू० ४६ से विकल्पसे 'चर्' होनेपर 'रामात्' तथा 'रामाद्' दो रूप निष्पन्न हुए।

पञ्चमी विभक्ति- रामात्-रामाद् रामाभ्याम् रामेभ्यः

(च) राम+ङस्—इस स्थितिमें सू० ८७ से 'ङस्' के स्थानमें 'स्य' करके रामस्य रूप निष्पन्न हुआ।

राम+ओस्—इस स्थितिमें—

९४ ओसि च ७। ३। १०४॥

अतोऽङ्गस्यैकारः स्यादोसि परे।

अदन्त अङ्गको 'एकार' होता है 'ओस्' परे हो तो।

इस सूत्रसे रामे+ओस् ऐसी स्थिति होनेपर सू० ३० से 'ए' को 'अय्' रामयोस् फिर 'रुत्व' तथा 'विसर्ग' करके 'रामयोः' रूप निष्पन्न हुआ।

राम+आम्-इस स्थितिमें—

९५ ह्रस्वनद्यापो नुट् ७। १। ५४॥

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात् परस्यामो नुडागमः स्यात्।

ह्रस्वान्त, नद्यन्त और आबन्त अङ्गसे परे 'आम्' को 'नुट्' का आगम होता है।

इस सूत्रसे राम+नाम् ऐसी स्थिति होनेपर—

९६ नामि ६। ४। ३॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यान्नामि परे।

अजन्त अङ्गको दीर्घ होता है, 'नाम्' परे हो तो।

इस सूत्रसे रामानाम् फिर सू० ८८ से 'न्' को 'ण्' करके 'रामाणाम्' बना।

षष्ठी विभक्ति—रामस्य रामयोः रामाणाम्

(छ) राम+ङि—इस स्थितिमें 'ङ्' का लोप तथा गुण करके 'रामे' रूप निष्पन्न हुआ। 'रामयोः' पूर्ववत्।

राम+सु–इस स्थितिमें सू० ९३ से 'एत्व' करके 'रामेसु' फिर सू० ५० से षत्व करके 'रामेषु' रूप निष्पन्न हुआ।

सप्तमी विभक्ति—रामे रामयोः रामेषु

९७ एकवचनं सम्बुद्धिः २। ३। ४९॥

सम्बोधने प्रथमायाः एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्।

सम्बोधनमें प्रथमाका एकवचन 'सम्बुद्धि' संज्ञक होता है।

९८ एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६। १। ६९॥

एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल् लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत्।

एङन्त और ह्रस्वान्त अङ्गसे परे 'हल्' का लुप् हो जाता है, यदि वह 'सम्बुद्धि' का हो तो।

सम्बोधन— हे राम! हे रामौ! हे रामाः!

इस प्रकार अकारान्त 'राम' शब्दकी रूपरचना सिद्ध हुई।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	,,	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	,,	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्, रामाद्	,,	,,
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	,,	रामेषु
सम्बोधन	हे राम!	हे रामौ!	हे रामाः!

अकारान्त अनुरूप शब्द

नर	= मनुष्य	अनल	= आग	दीप	= दीया
जन	= ,,	ईश्वर	= स्वामी	धूम	= धुआँ
नाग	= साँप	कूर्म	= कछुआ	पर्जन्य	= बादल
पतङ्ग	= कीट	पावक	= आग	सर्प	= साँप
आहार	= भोजन	शशाङ्क	= चन्द्रमा	धर्म	= धर्म
सूर्य	= रवि	दर्श	= आईना	वरुण	= जलका देवता
कौन्तेय	= कुन्तीपुत्र	कन्दर्प	= कामदेव	गजेन्द्र	= गजराज

प्रयोग—

जनः—यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। (३। २१)

पावकः—न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। (१५। ६)

ईश्वरम्—समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्। (१३। २८)

आचारः—न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते। (१६। ७)

दीपः—यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता। (६। १९)

धूमेन—धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च। (३। ३८)

कूर्मः—यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः। (२। ५८)
नागानाम्—अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्। (१०। २९)
अनलेन—कामरूपेण कौन्तेय! दुष्पूरेणानलेन च। (३। ३९)
आहारः—आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः। (१७। ७)
सर्पाणाम्—प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः। (१०। २८)
पर्जन्यात्—अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः। (३। १४)
पतङ्गाः—यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा। (११। २९)
धर्मस्य—स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (२। ४०)
नराणाम्—ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्। (१०। २७)

इकारान्त 'हरि'

निष्पत्तिः—हरि+सु=हरि+स्, फिर 'रुत्व' विसर्ग करके 'हरिः' निष्पन्न हुआ।

हरि+औ—इस स्थितिमें—

९९ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६। १। १०२॥

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात्।

'अक्' से प्रथमा-द्वितीया-सम्बन्धी 'अच्' परे हो तो 'पूर्वसवर्णदीर्घ' एकादेश होता है।

इस सूत्रसे पूर्वसवर्णदीर्घ करके 'हरी' रूप निष्पन्न हुआ।

हरि+जस्-इस स्थितिमें—

१०० जसि च ७। ३। १०९॥

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः।

ह्रस्वान्त अङ्गको 'गुण' होता है 'जस्' परे हो तो।

इस सूत्रसे गुण करनेपर हरे+अस्, फिर सू० ३० से 'अय्' करके 'हरयः' रूप निष्पन्न हुआ।

१०१ ह्रस्वस्य गुणः ७। ३। १०८॥

ह्रस्वस्य गुणः स्यात् सम्बुद्धौ।

ह्रस्वको गुण होता है सम्बुद्धिसंज्ञक प्रत्यय परमें हो तो।

गुण करके हे हरे! हरिम् हरी हरीन्।

१०२ शेषो घ्यसखि १। ४। ७॥

अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञम्।

नदीसंज्ञारहित ह्रस्व जो इकार-उकार, उनकी घिसंज्ञा होती है सखि शब्दको छोड़कर।

१०३ आङो नास्त्रियाम् ७। ३। १२०॥

घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम्।

'घि' संज्ञकसे परे आङ् (टा) को 'ना' आदेश होता है परन्तु स्त्रीलिङ्गमें नहीं। इस सूत्रसे हरि+ना, फिर सू० ८८ से 'न्' को 'ण्' करके 'हरिणा' निष्पन्न हुआ।

हरिणा हरिभ्याम् हरिभिः।

१०४ घेर्ङिति ७। ३। १११॥

घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः।

'घि' संज्ञकको 'ङित् सुप्' परे होनेपर 'गुण' होता है।

हरे+ए, सू० २९ से 'अय्' करके 'हरये' रूप निष्पन्न हुआ।

हरि+ङसि इस स्थितिमें 'ङ्' का लोप होनेपर हरि+अस्, फिर सू०१०४ से गुण करके—

१०५ ङसिङसोश्च ६। १। ११०॥

एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः।

'एङ्' से 'ङसि' 'ङस्'-सम्बन्धी अकार परे होनेपर पूर्वपरके स्थानमें पूर्वरूप एकादेश होता है।

इस सूत्रसे पूर्वरूप और उसके अनन्तर रुत्व-विसर्ग करके 'हरेः' रूप निष्पन्न हुआ।

हरेः हर्योः हरीणाम्।

हरि+ङि–इस स्थितिमें—

१०६ अच्च घेः ७। ३। ११९

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् घेरच्च।

इकार–उकारसे परे 'ङि' को 'औत्' और 'इ' और 'उ' को 'अ' आदेश होता है।

इससे हर+औ, फिर वृद्धि करके हरौ हर्योः हरिषु।

इकारान्त हरि

प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	,,	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	,,	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	,,	,,
षष्ठी	,,	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	,,	हरिषु
सम्बोधन	हे हरे!	हे हरी!	हे हरयः!

अनुरूप शब्द—

अग्नि	मुनि	रवि
ऋषि	कवि	वह्नि

प्रयोग

मुनीनाम्-कवीनाम्—मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः। (१०। ३७)

अग्निः-ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा। (४। ३७)

मुनयः-यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः। (१४। १)

रविः-ज्योतिषां रविरंशुमान्। (१०। २१)

वह्निः-धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च। (३। ३८)

महर्षयः-न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः। (१०। २)

कवयः-किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। (४। १६)

इकारान्त 'सखि'

निष्पत्तिः-सखि+सु—इस स्थितिमें—

१०७ अनङ् सौ ७। १। ९३॥

सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ।

'सखि' शब्दको 'अनङ्' आदेश होता है सम्बुद्धि-भिन्न 'सु' परे होनेपर। इस सूत्रसे सखन्+सु—

१०८ अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा १। १। ६५॥

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात्।

अन्तिम 'अल्' से पूर्ववर्ण 'उपधा' संज्ञक होता है।

१०९ सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६। ४। ८॥

नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।

नान्तकी उपधाको दीर्घ होता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो तो।

इस सूत्रसे 'सखान्'+स्—

११० अपृक्त एकाल् प्रत्ययः १। २। ४१॥

एकाल् प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात्।

एक 'अल्' वाला प्रत्यय 'अपृक्त' संज्ञक होता है।

१११ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् ६। १। ६८॥

हलन्तात्परं दीर्घौ यौङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते।

हलन्तसे परे सु, ति, सि के 'अपृक्त' हल्का और दीर्घ 'ङी' 'आप्' से परे 'सु' के 'अपृक्त' हल्का लोप होता है।

११२ न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८। २। ७॥

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः स्यात्।

प्रातिपदिकसंज्ञक पदके अन्तिम 'न्' का लोप होता है।

इस सूत्रसे 'न्' का लोप करके 'सखा' रूप निष्पन्न हुआ।

सखि+औ—इस स्थितिमें—

११३ सख्युरसम्बुद्धौ ७। १। ९२॥

सख्युरङ्गात्परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत् स्यात्।

'सखि' शब्दसे परे सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान णिद्वत् होता है।

११४ अचो ञ्णिति ७। २। ११५॥

अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च परे।

अजन्त अङ्गको 'ञित्' 'णित्' प्रत्यय परे होनेपर 'वृद्धि' होती है। इस सूत्रसे वृद्धि होनेपर तथा सू० २९ से 'आय्' करनेपर सखायौ, सखायः रूप बनते हैं।

सखे, सखायम्, सखायौ, सखीन्, सख्या, सख्ये।

सखि+ङसि=सखि+अस्='यण्' करनेपर सख्यस्—

११५ ख्यत्यात्परस्य ६। १। ११२॥

खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः।

'यण्' किये हुए ह्रस्व 'खि' 'ति' और दीर्घ 'खी' 'ती' शब्दसे परे 'ङसि' और 'ङस्' के अकारको 'उ' होता है। इससे 'सख्युः'।

सखि+ङि इस स्थितिमें—

११६ औत् ७। ३। ११८॥

इदुद्भ्यां परस्य ङेरौत्।

इकार-उकारसे परे 'ङि' को 'औत्' आदेश होता है।

'औ' तथा 'यण्' करके सख्यौ। शेषं हरिवत्।

इकारान्त 'सखि'

प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	,,	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	,,	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	,,	,,
षष्ठी	,,	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	,,	सखिषु
सम्बोधन	हे सखे!	हे सखायौ!	हे सखायः!

प्रयोग—

सखा-भक्तोऽसि मे सखा चेति। (४। ३)
सखा-सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तम्। (११। ४१)
सखीन्-पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा। (१। २६)
सख्युः-पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः। (११। ४४)

उकारान्त 'गुरु'

प्रथमा	गुरुः	गुरू	गुरवः
द्वितीया	गुरुम्	,,	गुरून्
तृतीया	गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः
चतुर्थी	गुरवे	,,	गुरुभ्यः
पञ्चमी	गुरोः	,,	,,
षष्ठी	,,	गुर्वोः	गुरूणाम्
सप्तमी	गुरौ	,,	गुरुषु
सम्बोधन	हे गुरो!	हे गुरू!	हे गुरवः!

इसकी निष्पत्ति हरिवत् होती है। यहाँ 'उ' के स्थानमें 'ओ'

करके फिर 'ओ' को 'अव्' करके रूप बनाये जाते हैं।

अनुरूप शब्द

जिज्ञासु = जाननेकी इच्छावाला	**कामेप्सु** = कामना रखनेवाला
आरुरुक्षु = आरोहणकी इच्छावाला	**इक्ष्वाकु** = विवस्वान्‌का पुत्र

रिपु	= वैरी	**विष्णु**	= भगवान्	**मनु**	= एक ऋषि
वसु	= आठ वसु	**शत्रु**	= वैरी	**मृत्यु**	= मौत
वायु	= हवा	**जन्तु**	= जीव	**बाहु**	= भुजा
विभु	= व्यापक	**प्रभु**	= स्वामी	**गतासु**	= मरा हुआ
वेपथु	= कँपकँपी	**इषु**	= बाण	**मेरु**	= एक पर्वत
साधु	= भला	**बन्धु**	= भाई	**स्थाणु**	= स्थिर

प्रयोग—

गुरुः-त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्। (११। ४३)

गुरून्-गुरूनहत्वा हि महानुभावान्। (२। ५)

गुरुणा-यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते। (६। २२)

बन्धुः, रिपुः-आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः (६। ५)

वसूनाम्, मेरुः-वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्। (१०। २३)

वायुः-तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि। (२। ६७)

विभुः-नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः। (५। १५)

विष्णो-धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो। (११। २४)

शत्रून्-जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्। (११। ३३)

जन्तवः-अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। (५। १५)

प्रभो!-मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो! (११। ४)

साधूनाम्-परित्राणाय साधूनां। (४। ८)

मुमुक्षुभिः-एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः। (४। १५)

प्रभुः-गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्। (९। १८)
मनुः, मनवे-विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे। (४। १
महाबाहो-तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि। (२। २६)
मृत्युः-जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। (२। २७)
इषुभिः-इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन! (२। ४)
गतासून्-गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। (२। ११)
वेपथुः-वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते। (१। २९)
स्थाणुः-नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः। (२। २४)

ऋकारान्त 'धातृ'

धातृ+सु—इस स्थितिमें—

११७ ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७। ३। ११०॥

ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च।

ऋदन्त अङ्गको गुण होता है, 'ङि' और सर्वनामस्थान परे हो तो।

इस सूत्रसे गुणकी प्राप्ति होनेपर—

११८ ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ७। १। ९७॥

ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ।

ऋदन्त तथा उशनसादिको 'अनङ्' होता है, सम्बुद्धिभिन्न 'सु' परे हो तो। इससे धातन्+सु इस स्थितिमें सू० १११ से 'सु' का और ११२ से 'न्' का लोप करके—

११९ अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ६। ४। ११॥

अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।

अप् आदिकी उपधाको दीर्घ होता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनाम-स्थान परे हो तो। उपधामें दीर्घ करके धाता, धातारौ, धातारः, धातारम्, धातारौ, धातॄन्, धात्रा, धात्रे। धातृ+ङसि-इस स्थितिमें—

१२० ऋत उत् ६। १। १११॥

ऋदन्ताद् ङसिङसोरति परे उदेकादेशः स्यात्।

ऋदन्त अङ्गसे परे 'ङसि' 'ङस्' सम्बन्धी अकार परे रहनेपर, पूर्वपरके स्थानमें उकार एकादेश होता है।

'धातुर्स्' इस स्थितिमें—

१२१ संयोगान्तस्य लोपः ८। २। २३॥

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात्।

संयोगान्त पदके अन्तका लोप होता है।

१२२ अलोऽन्त्यस्य १। १। ५२॥

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल् आदेशः स्यात्।

षष्ठीनिर्दिष्ट आदेश अन्त्य अल्को होता है।

१२३ रात्सस्य ८। २। २४॥

रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य।

'र्' से परे यदि संयोगान्तका लोप हो तो 'स्'का होता है अन्यका नहीं। 'स्' का लोप तथा 'र्' को विसर्ग करके 'धातुः' रूप निष्पन्न हुआ।

ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् (वार्तिक)

'ऋ' वर्णसे परे 'न्' को 'ण्' होता है।

धातृनाम्में 'न्' को 'ण' तथा दीर्घ करके धातृणाम्, धातरि, धात्रोः, धातृषु, धातः।

एवं नप्त्रादयः—

नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्।

अतः पितृ-मातृ आदि शब्दोंमें दीर्घ नहीं हुआ।

पिता, पितरौ, पितरः, पितरम्, पितरौ, शेषं धातृवत्।

प्रथमा	धाता	धातारौ	धातारः
द्वितीया	धातारम्	,,	धातॄन्
तृतीया	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः

चतुर्थी	धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पञ्चमी	धातुः	,,	,,
षष्ठी	,,	धात्रोः	धातॄणाम्
सप्तमी	धातरि	,,	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः!	हे धातारौ!	हे धातारः!

अनुरूप शब्द—

कर्तृ=करनेवाला, ज्ञातृ=जाननेवाला, मातृ (स्त्री०)=माता छेत्तृ=काटनेवाला, द्रष्टृ=देखनेवाला, भ्रातृ=भाई

सूचना—'मातृ' शब्द प्रयोग द्वितीया विभक्तिके बहुवचनमें 'मातॄः' रूप बनता है। शेष पितृवत् है।

प्रयोग—

धाता-पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः। (९। १७)

धातारम्-सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपम्। (८। ९)

पितरः-आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः। (१। ३४)

पितॄन्- } तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान्।
भ्रातॄन्- } आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन् पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा। (१। २६)

कर्ता-अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। (३। २७)

छेत्ता-त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता नह्युपपद्यते। (६। ३९)

द्रष्टा, कर्तारम्-नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति। (१४। १९)

पितॄणाम्-पितॄणामर्यमा चास्मि। (१०। २९)

ओकारान्त 'गो'

निष्पत्तिः-गो+सु=गो+स्=इस स्थितिमें—

१२४ गोतो णित् ७। १। ९०॥

ओकाराद् विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् स्यात्।

ओकारसे विहित सर्वनामस्थान 'णिद्वत्' होता है। सू. ११४ से वृद्धि, तदनन्तर 'स्' को विसर्ग करके गौः।

गौ+औमें सू० २९ से 'आव्' करके गावौ, गावः।

गो+अम् इस स्थितिमें—

१२५ औतोऽम्शसोः ६। १। ९३॥

ओतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः स्यात्।

ओकारसे 'अम्' 'शस्' का 'अ' परे रहते पूर्व-परके स्थानमें 'आ' एकादेश होता है। इस प्रकार गाम्, गाः रूप निष्पन्न होते हैं।

ओकारान्त 'गो'

प्र०	गौः	गावौ	गावः
द्वि०	गाम्	,,	गाः
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०	गवे	,,	गोभ्यः
पं०	गोः	,,	,,
ष०	,,	गवोः	गवाम्
स०	गवि	,,	गोषु
संबो०	हे गौः!	हे गावौ!	हे गावः!

प्रयोग—

गाः-किं नो राज्येन गोविन्द! किं भोगैर्जीवितेन वा। (१। ३२)

गाः-न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह। (२। ९)

विशेष—गाः विन्दतीति गोविन्दः। 'गो' शब्दका प्रयोग गीतामें समासमें ही पाया जाता है। गी० अ० ५ श्लो० १८ में गवि० शब्द है।

इत्यजन्तपुँल्लिङ्गाः

अथाजन्तस्त्रीलिङ्गाः

आकारान्त 'विद्या'

निष्पत्तिः-विद्या+सु इस स्थितिमें सू० १११ से स् का लोप करके 'विद्या' रूप निष्पन्न हुआ। विद्या+औ—

१२६ औङ आपः ७। १। १८॥

आबन्तादङ्गात्परस्यौङः शी स्यात्।

आबन्त अङ्गसे परे 'औ' को 'शी' आदेश होता है।

विद्या+(शी) ईमें 'गुण' करके 'विद्ये' रूप निष्पन्न हुआ।

विद्या+(जस्) अस्में सूत्र ९९ से पूर्वसवर्ण दीर्घ करके 'विद्याः' रूप निष्पन्न हुआ।

विद्या+(टा) आ इस स्थितिमें—

१२७ आङि चापः ७। ३। १०५॥

आङि ओसि च आप एकारः स्यात्।

'आङ्' और 'ओस्' परे रहते आबन्तको 'एकार' होता है।

विद्ये+आ फिर सू० २९ से 'अय्' करके 'विद्यया' रूप निष्पन्न हुआ।

१२८ याडापः ७। ३। ११३॥

आपो ङितो याट् स्यात्।

आबन्तसे परे ङिद्वचनोंको 'याट्' का आगम होता है। विद्या+या+ए में वृद्धि करके 'विद्यायै'। विद्या+ङि इस स्थितिमें—

१२९ ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७। ३। ११६॥

नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च ङेराम् स्यात्।

नद्यन्त, आबन्त और नी शब्दसे परे ङिको आम् आदेश होता है। इस सूत्रसे 'आम्' तथा सू० १२८ से 'याट्' का आगम करके विद्या+या+आम् 'विद्यायाम्' रूप निष्पन्न हुआ।

विद्या+सु (सम्बुद्धिमें) इस स्थितिमें—

१३० सम्बुद्धौ च ७। ३। १०६॥

आप एकारः स्यात् सम्बुद्धौ।

आबन्त अङ्गको 'ए' होता है सम्बुद्धिमें।

विद्ये+सु फिर सू० ९८ से 'सु' का लोप करके 'विद्ये' रूप निष्पन्न हुआ।

आकारान्त 'विद्या'

प्र०	विद्या	विद्ये	विद्याः
द्वि०	विद्याम्	,,	,,
तृ०	विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभिः
च०	विद्यायै	,,	विद्याभ्यः
पं०	विद्यायाः	,,	,,
ष०	,,	विद्ययोः	विद्यानाम्
स०	विद्यायाम्	,,	विद्यासु
संबो०	हे विद्ये!	हे विद्ये!	हे विद्याः!

अनुरूप शब्द

श्रद्धा	= प्रीति	**जरा**	= बुढ़ापा	**व्यथा**	= पीड़ा
चेष्टा	= प्रयत्न	**चिन्ता**	= चिन्ता	**शाखा**	= टहनी
हिंसा	= मारना, दुखाना	**दया**	= दया	**सेवा**	= सेवा
क्षमा	= क्षान्ति	**माया**	= प्रकृति	**मेधा**	= बुद्धि

प्रयोग

जरा = देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। (२। १३)

चिन्ताम् = चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः। (१६। ११)

दया = दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्। (१६। २)

मायया = माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः। (७। १५)

चेतना =इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना। (१०। २२)
व्यथा =मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्। (११। ४९)
शाखाः=अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखाः। (१५। २)
श्रद्धया=यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति। (७। २१)
चेष्टा =विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्। (१८। १४)
सेवया =यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया। (६। २०)
हिंसाम्=अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्। (१८। २५)

इकारान्त 'मति'

निष्पत्तिः—मति+सु=मति+स् इसमें 'स्' को 'र्' और 'र्' को विसर्ग करके 'मतिः', मति+औमें सू० ९९ से पूर्वसवर्ण दीर्घ करके 'मती' रूप निष्पन्न हुआ। मति+जस्में सू० १०० से गुण करके और सू० २९ से 'अय्' करके 'मतयः'। मति+(टा) आ में सू २७ से 'यण्' करके 'मत्या' रूप निष्पन्न हुआ। मति+(ङे) ए इस स्थितिमें—

१३१ ङिति ह्रस्वश्च १। ४। ६॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ चेवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति।

'इयङ्' 'उवङ्'—स्थानीय स्त्रीशब्दभिन्न नित्य स्त्रीलिङ्गवाचक ई, ऊ तथा ह्रस्व 'इवर्ण' 'उवर्ण' की विकल्पसे 'नदी' संज्ञा होती है, 'ङित्' वचन परे हो तो। 'आट्' करके मति+आ+ए फिर 'यण्' तथा वृद्धि करके 'मत्यै' पक्षमें 'घि' संज्ञाके कार्य 'गुण' तथा 'अय्' करके 'मतये' हरिवत् रूप बनता है। इसी प्रकार मत्याः—मतेः दो—दो रूप होते हैं।

मति+ङि—

१३२ इदुद्भ्याम् ७। ३। ११७॥

इदुद्भ्यां नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम् स्यात्।

'नदी' संज्ञावाले 'इकार' और 'उकार' से परे 'ङि' को 'आम्' होता है।

मति+आम् फिर 'यण्' करके मत्याम्। शेषरूपोंकी निष्पत्ति हरिवत् है।

इकारान्त 'मति'

प्र०	मतिः	मती	मतयः
द्वि०	मतिम्	,,	मतीः
तृ०	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
च०	मत्यै, मतये	,,	मतिभ्यः
पं०	मत्याः, मतेः	,,	,,
ष०	,, ,,	मत्योः	मतीनाम्
स०	मत्याम्, मतौ	,,	मतिषु
संबो०	हे मते!	मती!	मतयः!

अनुरूप शब्द—

कीर्ति = यश	समाधि = प्रीति	विभूति= ऐश्वर्य
गति = दशा	श्रुति = वेद	स्तुति = प्रशंसा
योनि = मूलस्थान	शान्ति = शान्ति	शुद्धि = स्वच्छता
सिद्धि = सफलता	रात्रि = रात	धृति = धैर्य
गति = स्वभाव	सृति = सरणि	

प्रयोग—

मतिः-असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः। (६। ३६)

अकीर्तिम्-अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति ते० (२। ३४)

सिद्धये-मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। (७। ३)

योनिषु-क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु। (१६। १९)

समाधौ-व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते। (२। ४४)

श्रुति-तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः। (१३। २५)
शान्तिम्-स शान्तिमाप्नोति न कामकामी। (२। ७०)
रात्रिः-धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्। (८। २५)
विभूतीनां-नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप (१०। ४०)
स्तुतिभिः-स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः। (११। २१)
प्रकृतेः-भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्। (९। ८)
शुद्धये-योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये। (५। ११)
धृतिम्-धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो। (११। २४)
दुर्गतिम्-नहि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति। (६। ४०)
सृती-नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन। (८। २७)

ईकारान्त 'नदी'

प्र०	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वि०	नदीम्	,,	नदीः
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च०	नद्यै	,,	नदीभ्यः
पं०	नद्याः	,,	,,
ष०	,,	नद्योः	नदीनाम्
स०	नद्याम्	,,	नदीषु
संबो०	हे नदि!	हे नद्यौ!	हे नद्यः!

अनुरूप शब्द

दैवी =देवोंकी | **गायत्री** =एक छन्द | **आसुरी** = असुरोंकी
मोहिनी =मोहित करनेवाली | **तामसी** =तमोगुणयुक्त
सात्त्विकी =सत्त्वगुणयुक्त | **राजसी** =रजोगुणयुक्त

ईकारान्त 'स्त्री'

निष्पत्तिः—स्त्री+सु इस स्थितिमें सू० १११ से 'सु' का लोप करके 'स्त्री', स्त्री+औ इस स्थितिमें—

१३३ स्त्रियाः ६। ४। ७९॥

अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे।

'स्त्री' शब्दको 'इयङ्' आदेश होता है, अजादि प्रत्यय परे होनेपर।

'इयङ्' करनेपर 'स्त्रियौ' 'स्त्रियः' रूप निष्पन्न हुए। स्त्री+अम् इस स्थितिमें—

१३४ वाम्शसोः ६। ४। ८०॥

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात्।

'अम्' 'शस्' परे होनेपर 'स्त्री' शब्दको 'इयङ्' विकल्पसे होता है।

इससे स्त्रियम्—स्त्रीम् दो रूप सिद्ध हुए।

स्त्री+आम् इस स्थितिमें सू० ९५ से 'नुट्' का आगम करके स्त्री+नाम् फिर णत्व करके स्त्रीणाम्। स्त्री+ङि इस स्थितिमें 'ङि' को 'आम्' तथा 'इयङ्' करके 'स्त्रियाम्' रूप निष्पन्न हुआ।

स्त्री+सु (सम्बुद्धिमें) 'सु' का लोप तथा 'ई' को ह्रस्व करके 'स्त्रि!' रूप निष्पन्न हुआ।

ईकारान्त 'स्त्री'

प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वि०	स्त्रियम्, स्त्रीम्	,,	,, स्त्रीः
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
च०	स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्यः
पं०	स्त्रियाः	,,	,,
ष०	,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु
संबो०	हे स्त्रि!	हे स्त्रियौ!	हे स्त्रियः!

प्रयोग—

स्त्रियः-स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्। (९। ३२)

स्त्रीषु-स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय! जायते वर्णसंकरः। (१। ४१)

उकारान्त 'धेनु'

निष्पत्तिः-'धेनु' शब्दकी निष्पत्ति 'मति' की तरह होती है। 'उ' को ओ गुण होकर 'अव्' आदेशसे रूप निष्पन्न होते हैं।

प्र०	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वि०	धेनुम्	,,	धेनूः
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः
पं०	धेन्वाः, धेनोः	,,	,,
ष०	,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
स०	धेन्वाम्, धेनौ	,,	धेनुषु
संबो०	हे धेनो!	हे धेनू!	हे धेनवः!

प्रयोग—

धेनूनाम्-आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् (१०। २८)

ऋकारान्त 'मातृ'

निष्पत्तिः—'मातृ' शब्दके रूपोंकी निष्पत्ति 'पितृवत्' होती है। केवल द्वितीयाके बहुवचनमें मातृ+(शस्) अस्में सू० ९९ से पूर्वसवर्ण दीर्घ करके 'मातॄः' रूप निष्पन्न हुआ।

प्रयोग—

माता—पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः। (९। ७)

इत्यजन्तस्त्रीलिङ्गाः

अथाजन्तनपुंसकलिङ्गाः

अकारान्त 'ज्ञान'

निष्पत्तिः-ज्ञान+सु इस स्थितिमें—

१३५ अतोऽम् ७। १। २४॥

अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम्।

नपुंसक अदन्त अङ्गसे परे 'सु' और 'अम्' को 'अम्' होता है।

'सु'के स्थानमें 'अम्' करके 'ज्ञानम्' रूप निष्पन्न हुआ। ज्ञान+औ इस स्थितिमें—

१३६ नपुंसकाच्च ७। १। १९

क्लीबादौङः शी स्यात्।

नपुंसक अङ्गसे परे 'औङ्' को 'शी' होता है। ज्ञान+(शी) ई गुण करके ज्ञाने। ज्ञान+जस् इस स्थितिमें—

१३७ जश्शसोः शिः ७। १। २०॥

क्लीबादनयोः शिः स्यात्।

अदन्त नपुंसकसे परे 'जस्' और 'शस्' को 'शि' होता है।

१३८ शि सर्वनामस्थानम् १। १। ४२॥

शि इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात्।

'शि'की 'सर्वनामस्थान' संज्ञा होती है।

१३९ नपुंसकस्य झलचः ७। १। ७२॥

झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने।

झलन्त और अजन्त नपुंसकको 'नुम्' होता है 'सर्वनामस्थान' परे होनेपर।

१४० मिदचोऽन्त्यात्परः १। १। ४७॥

अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो 'मित्' स्यात्।

अचोंके मध्यमें जो अन्त्य है, उससे परे उसी अन्त्य 'अच्'का अन्तावयव 'मित्' होता है।

ज्ञान+जस्=ज्ञान+(शि) इ में सू० १३९ से 'नुम्' करके ज्ञानन्+इ में सू० १०९ से उपधाको दीर्घ करके 'ज्ञानानि' रूप निष्पन्न हुआ।

द्वितीया विभक्तिमें रूप प्रथमाकी तरह होते हैं। शेष रामवत्।

अकारान्त 'ज्ञान'

प्र०	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
च०	ज्ञानाय	,,	ज्ञानेभ्यः
पं०	ज्ञानात्	,,	,,
ष०	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्
स०	ज्ञाने	,,	ज्ञानेषु
संबो०	हे ज्ञान!	हे ज्ञाने!	हे ज्ञानानि!

प्रयोग—

ज्ञानम्-सत्त्वात्संजायते ज्ञानम्। (१४। १७)

अज्ञानेन-अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः (५। १५)

ज्ञानात्-ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते। (१२। १२)

ज्ञानम्-आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा। (३। ३९)

ज्ञानिभ्यः-तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। (६। ४६)

ज्ञाने-सर्वं कर्माखिलं पार्थ! ज्ञाने परिसमाप्यते। (४। ३३)

अनुरूप शब्द

अघ = पाप	**आसन** = आसन	**इन्द्रिय** = इन्द्रियाँ
अन्न = अनाज	**फल** = फल	**वक्त्र** = मुख

क्षेत्र = खेत	रूप = रूप	मुख = मुँह
निधन = मृत्यु	नेत्र = नयन	मल = मैल
पाप = पाप	भय = डर	सत्त्व = बल
मूल = जड़	कुल = वंश	आयुध = शस्त्र

प्रयोग—

अघम्-भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्। (३। १३)
आसने-उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये। (६। १२)
अन्नात्-अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः (३। १४)
क्षेत्रम्-इदं शरीरं कौन्तेय! क्षेत्रमित्यभिधीयते। (१३। १)
फलेषु-कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (२। ४७)
रूपम्-रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रम्। (११। २३)
वक्त्राणि-विशन्ति वक्त्राणि। (११। २८)
इन्द्रियाणि-इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः। (२। ६०)
भयेन-भयेन च प्रव्यथितं मनो मे। (११। ४५)
निधनम्-स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। (३। ३५)
आयुधानाम्-आयुधानामहं वज्रम्। (१०। २८)
सत्त्वम्-सत्त्वं सत्त्ववतामहम्। (१०। ३६)
मलेन-धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च। (३। ३८)
पापम्-पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः। (१। ३६)
मूलानि-अधश्च मूलान्यनुसंततानि। (१५। २)

इकारान्त 'वारि'

वारि+सु—इस स्थितिमें—

१४१ स्वमोर्नपुंसकात् ७। १। २३॥

लुक् स्यात्।

नपुंसक अङ्गसे परे 'सु' और 'अम्' का लुक् (लोप) होता है।

'सु' का लोप् होकर 'वारि' रूप निष्पन्न हुआ।

वारि+औ—इस स्थितिमें सू० १३६ से (शी) 'ई' करके वारि+ई इस स्थितिमें—

१४२ इकोऽचि विभक्तौ ७। १। ७३॥

इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ।

नपुंसक इगन्त अङ्गको 'नुम्' होता है अजादि विभक्ति परे हो तो। वारिन्+ईमें 'णत्व' करके 'वारिणी' रूप निष्पन्न हुआ।

वारि+जस्—इस स्थितिमें सू० १४० से 'जस्' के स्थानमें (शि) 'इ' करके सूत्र १३९ से नुमागमके बाद फिर सू० १०९ से (उपधामें) दीर्घ करके तथा णत्व करके 'वारीणि' रूप निष्पन्न हुआ।

सम्बोधनमें विकल्पसे गुण होता है, अतः वारे! वारि! सम्बोधनके एक वचनमें दो रूप बनते हैं।

इकारान्त 'पूति'

प्र०	पूति	पूतिनी	पूतीनि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	पूतिना	पूतिभ्याम्	पूतिभिः
च०	पूतिने	,,	पूतिभ्यः
पं०	पूतिनः	,,	,,
ष०	,,	पूतिनोः	पूतीनाम्
स०	पूतिनि	पूतिनोः	पूतिषु
संबो०	हे पूति!	हे पूतिनी!	हे पूतीनि!

प्रयोग

बहूनि-बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। (४। ५)

पूति-यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। (१७। १०)

गुरुणा-यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते। (६। २२)

उकारान्त 'बहु'

प्र०	बहु	बहुनी	बहूनि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	बहुना	बहुभ्याम्	बहुभिः
च०	बहुने	,,	बहुभ्यः
पं०	बहुनः	,,	,,
ष०	,,	बहुनोः	बहूनाम्
स०	बहुनि	,,	बहुषु
संबो०	हे बहु!	हे बहुनी!	हे बहूनि!

प्रयोग—

ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु } भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च। (१३। १६)

ऋकारान्त 'कर्तृ'

प्र०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च०	कर्तृणे	,,	कर्तृभ्यः
पं०	कर्तृणः	,,	,,
ष०	,,	कर्तृणोः	कर्तॄणाम्
स०	कर्तृणि	,,	कर्तृषु
संबो०	हे कर्तृ!	हे कर्तृणी!	हे कर्तॄणि!

प्रयोग—

भोक्तृ-असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च। (१३। १४)

कर्त्रे-गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे। (११। ३७)

भर्तृ-भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च। (१३। १६)

इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गाः



अथ हलन्तपुँल्लिङ्गाः

तकारान्त 'मरुत्'

प्र०	मरुत्	मरुतौ	मरुतः
द्वि०	मरुतम्	,,	,,
तृ०	मरुता	मरुद्भ्याम्	मरुद्भिः
च०	मरुते	,,	मरुद्भ्यः
पं०	मरुतः	,,	,,
ष०	,,	मरुतोः	मरुताम्
स०	मरुति	,,	मरुत्सु
सम्बो०	मरुत्!	मरुतौ!	मरुतः!

निष्पत्तिः—मरुत्+सु—इस स्थितिमें सू० १११ से 'सु' का लोप करके 'मरुत्' की निष्पत्ति हुई। मरुत्+औ=मरुतौ, मरुत्+(जस्) अस् 'स्' को 'र्' और 'र्' को विसर्ग करके मरुतः। हलादि विभक्तियोंमें 'त्' को 'द्' करके 'मरुद्भ्याम्' आदि रूप बनते हैं।

अनुरूप शब्द—

पुरुजित् = इन्द्र विपश्चित् = विद्वान्

प्रयोग—

मरुतः-पश्यादित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा। (११। ६)
मरुताम्-मरीचिर्मरुतामस्मि। (१०। २१)
पुरुजित्-पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः। (१। ५)

मत्-अन्त 'धीमत्'

प्र०	धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः
द्वि०	धीमन्तम्	,,	धीमतः
तृ०	धीमता	धीमद्भ्याम्	धीमद्भिः

च०	धीमते	धीमद्भ्याम्	धीमद्भ्यः
पं०	धीमतः	,,	,,
ष०	,,	धीमतोः	धीमताम्
स०	धीमति	,,	धीमत्सु
सम्बो०	हे धीमन्!	हे धीमन्तौ!	हे धीमन्तः!

निष्पत्तिः—धीमत्+सु इस स्थितिमें—

१४३ अत्वसन्तस्य चाधातोः ६। ४। १४॥

अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ परे।

अत्वन्तकी उपधा तथा धातुभिन्न असन्तकी उपधाको 'दीर्घ' होता है, सम्बुद्धिभिन्न 'सु' परे हो तो। इससे उपधामें 'दीर्घ' करके—

१४४ उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७। १। ७०॥

अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च 'नुम्' स्यात्सर्वनामस्थाने।

धातुभिन्न उगित् और नलोपवाले अञ्चु धातुको 'नुम्' होता है, सर्वनामस्थानमें।

इस सूत्रसे 'नुम्' तथा सू० १११ से 'सु' का लोप करके 'धीमान्'। धीमन्तौ धीमन्तः। हलादि विभक्तियोंमें सू० ३९ से 'त्' को 'द्' करके धीमद्भ्याम्।

अनुरूप शब्द—

अंशुमत् = सूर्य   **बुद्धिमत्** = बुद्धिवाला

श्रीमत् = शोभावाला   **भक्तिमत्** = भक्तिवाला

प्रयोग—

धीमता- पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥ (१।३)

धीमताम्-अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्। (६। ४२)

भक्तिमान्-शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।
(१२।१७)

बुद्धिमान्- स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्। (४। १८)
बुद्धिमताम्- बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्। (७। १०)
श्रीमताम्- शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। (६। ४१)
अंशुमान्- आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्। (१०। २१)

वत्-अन्त 'भवत्'

प्र०	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
द्वि०	भवन्तम्	,,	भवतः
तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
च०	भवते	,,	भवद्भ्यः
पं०	भवतः	,,	,,
ष०	,,	भवतोः	भवताम्
स०	भवति	,,	भवत्सु
सम्बो०	हे भवन्!	हे भवन्तौ!	हे भवन्तः!

निष्पत्तिः—'भवत्' शब्दकी निष्पत्ति 'धीमत्' की तरह होती है।

अनुरूप शब्द

अन्तवत् = अन्तवाला **भगवत्** = भगवान्
ज्ञानवत् = ज्ञानवाला **यावत्** = जितना
बलवत् = बलवाला **सत्त्ववत्** = सत्त्व (बल) वाला
विवस्वत् = सूर्य **प्रतापवत्** = प्रतापवाला
भास्वत् = चमकता हुआ

प्रयोग—

भवन्तः-भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि। (१। ११)
भवतः-अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः। (४। ४)
अन्तवन्तः-अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। (२। १८)

बलवान्-ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी। (१६। १४)
ज्ञानवान्-सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि। (३। ३३)
सत्त्ववताम्-जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्। (१०। ३६)
विवस्वते-इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्। (४। १)
भास्वता-नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता। (१०। ११)

शतृ (अत्) अन्त 'ध्यायत्'

प्र०	ध्यायन्	ध्यायन्तौ	ध्यायन्तः
द्वि०	ध्यायन्तम्	,,	ध्यायतः
तृ०	ध्यायता	ध्यायद्भ्याम्	ध्यायद्भिः
च०	ध्यायते	,,	ध्यायद्भ्यः
पं०	ध्यायतः	,,	,,
ष०	,,	ध्यायतोः	ध्यायताम्
स०	ध्यायति	,,	ध्यायत्सु
सम्बो०	हे ध्यायन्!	हे ध्यायन्तौ!	हे ध्यायन्तः!

निष्पत्तिः—'ध्यायत्' शब्दकी निष्पत्ति 'बलवत्'की तरह होती है, केवल प्रथमा विभक्तिके एकवचनमें 'उपधा' को दीर्घ नहीं होता है, अतः 'ध्यायन्' रूप बनता है।

अनुरूप शब्द—

नमस्यत्	= नमस्कार करता हुआ	विषीदत्	= दुःख पाता हुआ
जानत्	= जानता हुआ	जाग्रत्	= जागता हुआ
जिघ्रत्	= सूँघता हुआ	यजत्	= यज्ञ करता-हुआ
तिष्ठत्	= बैठता हुआ		
तपत्	= तपता हुआ	युञ्जत्	= जोड़ता हुआ
संयमत्	= संयम करता हुआ	पश्यत्	= देखता हुआ
शृण्वत्	= सुनता हुआ	अश्नत्	= खाता हुआ
गच्छत्	= जाता हुआ	स्वपत्	= सोता हुआ

श्वसत् = साँस लेता हुआ **स्पृशत्** = स्पर्श करता हुआ

प्रयोग—

ध्यायन्तः-अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते। (१२। ६)

ध्यायतः-ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। (२। ६२)

नमस्यन्तः-नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते। (९। १४)

जानन्-नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन। (८। २७)

यजन्तः-ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। (९। १५)

तिष्ठन्तम्-समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। (१३। २७)

युञ्जतः-योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः। (६। १९)

तपन्तम्-पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्। (११। १९)

पश्यत्-नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥ (५। ८)

तकारान्त 'महत्'

प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वि०	महान्तम्	,,	महतः
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
च०	महते	,,	महद्भ्यः
पं०	महतः	,,	,,
ष०	,,	महतोः	महताम्
स०	महति	,,	महत्सु
सम्बो०	हे महन्!	हे महान्तौ!	हे महान्तः!

निष्पत्तिः—महत्+सु इस स्थितिमें 'नुम्' करके महन् त् सु—

१४५ सान्तमहतः संयोगस्य ६। ४। १०॥

सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।

सान्त संयोग और 'महत्' शब्दका जो नकार उसकी

उपधाको दीर्घ होता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो तो।

इससे उपधाको दीर्घ तथा सू० १११ से 'सु'का लोप तथा सू० १२१ से त् का लोप करके 'महान्, महान्तौ, महद्भ्याम्, हे महन्।'

प्रयोग—

महान्-विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः। (१८। ७७)

महता-स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप। (४। २)

महतः-स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (२। ४०)

दकारान्त 'तत्त्वविद्'

प्र०	तत्त्ववित्-द्	तत्त्वविदौ	तत्त्वविदः
द्वि०	तत्त्वविदम्	,,	,,
तृ०	तत्त्वविदा	तत्त्वविद्भ्याम्	तत्त्वविद्भिः
च०	तत्त्वविदे	,,	तत्त्वविद्भ्यः
पं०	तत्त्वविदः	,,	,,
ष०	,,	तत्त्वविदोः	तत्त्वविदाम्
स०	तत्त्वविदि	,,	तत्त्ववित्सु
सम्बो०	हे तत्त्वविद्!	हे तत्त्वविदौ!	हे तत्त्वविदः!

प्रयोग—

तत्त्ववित्—तत्त्ववित्तु महाबाहो! गुणकर्मविभागयोः। (३। २८)

धकारान्त 'युध्'

प्र०	युत्-द्	युधौ	युधः
द्वि०	युधम्	,,	,,
तृ०	युधा	युद्भ्याम्	युद्भिः
च०	युधे	,,	युद्भ्यः
पं०	युधः	,,	,,
ष०	युधः	युधोः	युधाम्
स०	युधि	,,	युत्सु
सम्बो०	प्रथमावत्।		

१४६ सौ च ६। ४। १३॥

इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सौ।

इन्, हन्, पूषन्, अर्यमन्की उपधाको दीर्घ होता है, सम्बुद्धि भिन्न सु परे रहते।

नकारान्त 'अर्यमन्'

प्र०	अर्यमा	अर्यमणौ	अर्यमण:
द्वि०	अर्यमणम्	,,	अर्यम्ण:
तृ०	अर्यम्णा	अर्यमभ्याम्	अर्यमभि:
च०	अर्यम्णे	,,	अर्यमभ्य:
पं०	अर्यम्ण:	,,	,,
ष०	,,	अर्यम्णो:	अर्यम्णाम्
स०	अर्यम्णि	,,	अर्यमसु
सम्बो०	हे अर्यमन्!	हे अर्यमणौ!	हे अर्यमण:!

निष्पत्ति:—अर्यमन्+सु इस स्थितिमें 'सौ च' सू० से उपधाको दीर्घ सू० १११ से 'सु' का लोप तथा सू० ११२ से 'न्' का लोप करके 'अर्यमा'। अर्यम्ण: देखिये सू० १४७।

अनुरूप शब्द—

मूर्धन् = माथा **महिमन्** = बड़ाई

प्रयोग—

अर्यमा- पितॄणामर्यमा चास्मि यम: संयमतामहम्। (१०। २९)

महिमानम्-अजानता महिमानं तवेदम्। (११। ४१)

मूर्ध्नि-मूर्ध्न्याधायात्मन: प्राणमास्थितो योगधारणाम्। (८। १२)

नकारान्त 'आत्मन्'

प्र०	आत्मा	आत्मानौ	आत्मान:
द्वि०	आत्मानम्	,,	आत्मन:
तृ०	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभि:
च०	आत्मने	,,	आत्मभ्य:

पं०	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
ष०	,,	आत्मनोः	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सम्बो०	हे आत्मन्!	हे आत्मानौ!	हे आत्मानः!

निष्पत्तिः—आत्मन्+सु इस स्थितिमें उपधाको दीर्घ, 'न्' और 'सु'का लोप करके 'आत्मा' रूप निष्पन्न हुआ। आत्मन्+औ-उपधामें दीर्घ करके 'आत्मानौ'।

प्रयोग—

आत्मा- / **आत्मनः-** } आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः। (६। ५)
ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। (५। १६)

आत्मानम्- } यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। (४। ७)

आत्मना- / **आत्मनि-** } आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते। (२। ५५)

नकारान्त 'राजन्'

प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
द्वि०	राजानम्	,,	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
च०	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पं०	राज्ञः	,,	,,
ष०	,,	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०	राज्ञि, राजनि	,,	राजसु
सम्बो०	हे राजन्!	हे राजानौ!	हे राजानः!

निष्पत्तिः—राजन्+सु इस स्थितिमें सू० १०९ से उपधाको दीर्घ, सू० १११ से 'सु' का लोप तथा सू० ११२ से 'न्' का लोप करके 'राजा' रूप निष्पन्न हुआ।

राजन्+सु (सम्बोधन) इस स्थितिमें—

१४७ न ङिसम्बुद्ध्योः ८। २। ८॥

नस्य लोपो न ङौ सम्बुद्धौ च।

'ङि' और सम्बुद्धि परे होनेपर 'न्' का लोप नहीं होता। 'सु'का लोप करके 'राजन्' रूप निष्पन्न हुआ। राजन्+(शस्) अस् इस स्थितिमें—

१४८ अल्लोपोऽनः ६। ४। १३४॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः।

अङ्गका अवयव सर्वनामस्थानभिन्न यजादिस्वादिपरक जो 'अन्' उसके 'अ'का लोप होता है। राज् न्+अस् स्थितिमें सू० ३७ से 'न्'को 'ञ्' करके (जञोर्ज्ञः) ज्+ञ्=ज्ञ होकर राज्ञः। राजभ्याम्में 'न्' का लोप हो जाता है।

राजन्+ङि इस स्थितिमें—

१४९ विभाषा ङिश्योः ६। ४। १३६॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः।

अङ्गका अवयव सर्वनामस्थानसे भिन्न यजादिस्वादिपरक जो 'अन्' उसके 'अ' का लोप विकल्पसे होता है, 'ङि' और 'शी' परे हो तो। राज्ञि वा राजनि—दो रूप निष्पन्न हुए।

प्रयोग—

राजा-आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत्। (१। २)

राजन्-विस्मयो मे महान् राजन्! हृष्यामि च पुनः पुनः। (१८।७७)

नकारान्त 'पथिन्'

प्र०	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वि०	पन्थानम्	,,	पथः

तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
च०	पथे	,,	पथिभ्यः
पं०	पथः	,,	,,
ष०	,,	पथोः	पथाम्
स०	पथि	,,	पथिषु
सम्बो०	हे पन्थाः!	हे पन्थानौ!	हे पन्थानः!

निष्पत्तिः—पथिन्+सु इस स्थितिमें—

१५० थो न्थः ७। १। ८७॥

पथिमथोस्थस्य न्थादेशः स्यात्सर्वनामस्थाने।

'पथिन्' और 'मथिन्' के 'थ' को 'न्थ' आदेश होता है, सर्वनामस्थानमें।

१५१ पथिमथ्यृभुक्षामात् ७। १। १८५॥

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात्सौ परे।

पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन्को आकार अन्तादेश होता है, सु परे होनेपर।

१५२ इतोऽत्सर्वनामस्थाने ७। १। ८६॥

पथ्यादेरिकारस्याकारः स्यात् सर्वनामस्थाने परे।

पथ्यादिके इकारको अकार होता है, सर्वनामस्थानपरमें होनेपर।

इस प्रकार 'इ' को 'अ' दीर्घ 'थ' को 'न्थ' और 'स्' को विसर्ग करके पन्थाः। पथिन्+(शस्) अस् इस स्थितिमें—

१५३ भस्य टेर्लोपः ७। १। ८८॥

भस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात्।

'भ' संज्ञक पथ्यादिकी 'टि' का लोप होता है। इससे टि (इन्) का लोप करके 'पथः'।

प्रयोग—

पथि—अप्रतिष्ठो महाबाहो! विमूढो ब्रह्मणः पथि। (६। ३८)

नकारान्त 'श्वन्'

प्र०	श्वा	श्वानौ	श्वानः
द्वि०	श्वानम्	,,	शुनः
तृ०	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
च०	शुने	,,	श्वभ्यः
पं०	शुनः	,,	,,
ष०	,,	शुनोः	शुनाम्
स०	शुनि	शुनोः	श्वसु
सम्बो०	हे श्वन्!	हे श्वानौ!	हे श्वानः!

निष्पत्तिः—श्वन्+सु इस स्थितिमें सू० १०९ से उपधाको दीर्घ, सू० १११ से 'सु' का लोप तथा सू० ११२ से 'न्' का लोप करके 'श्वा'।

श्वन्+(शस्) अस् इस स्थितिमें—

१५४ श्वयुवमघोनामतद्धिते ६। ४। १३३।

अन्नतानां भानामेषामतद्धिते सम्प्रसारणम्।

अन्नन्त भसंज्ञक श्वन्-युवन्-मघवन्को सम्प्रसारण होता है, तद्धित-भिन्न प्रत्यय परे हो तो। 'व्' को 'उ सम्प्रसारण' करके 'शुनः'। हलादि विभक्तियोंमें 'न्' का लोप करके श्वभ्याम्, श्वभिः। सम्बोधनके एकवचनमें उपधाको दीर्घ नहीं होता, अतः श्वन्।

प्रयोग—

शुनि- विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (५। १८)

इन्-अन्त 'शशिन्'

प्र०	शशी	शशिनौ	शशिनः
द्वि०	शशिनम्	,,	,,
तृ०	शशिना	शशिभ्याम्	शशिभिः

च०	शशिने	शशिभ्याम्	शशिभ्यः
पं०	शशिनः	,,	,,
ष०	,,	शशिनोः	शशिनाम्
स०	शशिनि	,,	शशिषु
सम्बो०	हे शशिन्!	हे शशिनौ!	हे शशिनः!

निष्पत्तिः—शशिन्+सु इस स्थितिमें उपधामें दीर्घ तथा 'सु' और 'न्' का लोप करके 'शशी'। शेष स्पष्ट है।

अनुरूप शब्द

मेधाविन् = बुद्धिमान् **त्यागिन्** = त्यागनेवाला
मौनिन् = चुप रहनेवाला **क्षेत्रिन्** = आत्मा
साक्षिन् = देखनेवाला **भोगिन्** = भोगनेवाला

प्रयोग—

शशी-मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी। (१०। २१)
त्यागी- **मेधावी**- न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते। त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥ (१८।१०)
मौनी-तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्। (१२।१९)
साक्षी-गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्। (९।१८)
क्षेत्री-क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत। (१३।३३)
भोगी-ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी। (१६।१४)

शकारान्त 'ईदृश्'

प्र०	ईदृक्-ग्	ईदृशौ	ईदृशः
द्वि०	ईदृशम्	,,	,,
तृ०	ईदृशा	ईदृग्भ्याम्	ईदृग्भिः
च०	ईदृशे	,,	ईदृग्भ्यः
पं०	ईदृशः	,,	,,
ष०	,,	ईदृशोः	ईदृशाम्

स०	ईदृशि	ईदृशोः	ईदृक्षु
सम्बो०	प्रथमावत्।		

निष्पत्तिः—ईदृश्+सु इस स्थितिमें 'सु' का लोप होनेपर—

१५५ क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८। २। ६२॥

क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः स्यात् पदान्ते।

'क्विन्' प्रत्यय जिससे हो उसके अन्तिम वर्णको कवर्ग होता है, पदान्तमें।

ईदृश्में 'श्' को 'क्' तथा सू० ४६ से 'क्' के स्थानमें विकल्पसे 'ग्' करके ईदृक्-ईदृग् दो रूप हुए।

प्रयोग—

ईदृक्- मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्। (११।४९)

ईदृशम्-सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। (२। ३२)

वस्-अन्त 'विद्वस्'

प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वि०	विद्वांसम्	,,	विदुषः
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
च०	विदुषे	,,	विद्वद्भ्यः
पं०	विदुषः	,,	,,
ष०	,,	विदुषोः	विदुषाम्
स०	विदुषि	,,	विद्वत्सु
सम्बो०	हे विद्वन्!	हे विद्वांसौ!	हे विद्वांसः!

निष्पत्तिः—विद्वस्+सु इस स्थितिमें उपधाको दीर्घ सू० १४५ से, 'नुम्' सू० १४४ से, 'सु' का लोप १११ सू० से करके 'विद्वान्'।

विद्वस्+(शस्) अस् इस स्थितिमें—

१५६ वसोः सम्प्रसारणम् ६। ४। १३१॥

वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात्।

वस्वन्त 'भ' संज्ञावाले अङ्गको 'सम्प्रसारण' होता है। 'व' को 'उ' सम्प्रसारण करके तथा सू० ५० से 'स्' को 'ष्' करके विदुषः।

विद्वस्+भ्याम् इस स्थितिमें—

१५७ वसुस्त्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८। २। ७२॥

सान्तवस्वन्तस्य स्त्रंसादेश्च दः स्यात्पदान्ते।

सान्त, वस्वन्त और स्त्रंसादिके 'स्' को 'द्' होता है, पदान्तमें। 'स्' को 'द्' करके 'विद्वद्भ्याम्' रूप निष्पन्न हुआ।

प्रयोग—

विद्वान्-जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्। (३। २६)

विद्वांसः-सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत। (३। २५)

ईयस्-अन्त 'गरीयस्'

प्र०	गरीयान्	गरीयांसौ	गरीयांसः
द्वि०	गरीयांसम्	,,	गरीयसः
तृ०	गरीयसा	गरीयोभ्याम्	गरीयोभिः
च०	गरीयसे	,,	गरीयोभ्यः
पं०	गरीयसः	,,	,,
ष०	,,	गरीयसोः	गरीयसाम्
स०	गरीयसि	,,	गरीयस्सु
सम्बो०	हे गरीयन्!	हे गरीयांसौ!	हे गरीयांसः!

निष्पत्तिः—गरीयस्+सु इस स्थितिमें सू० १११ से 'सु' का लोप उपधाको दीर्घ तथा 'नुम्' करके 'गरीयान्'। सम्बोधनके एकवचनमें उपधाको दीर्घ नहीं होता है-यथा गरीयन्।

अनुरूप शब्द—

अणीयस्—छोटे-से-छोटा

प्रयोग—

गरीयान्-पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्। (११।४३)

गरीयसे-कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे। (११।३७)

अणीयांसम्—कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः । (८।९)

स्-अन्त 'पुमस्'

प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
द्वि०	पुमांसम्	,,	पुंसः
तृ०	पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः
च०	पुंसे	,,	पुंभ्यः
पं०	पुंसः	,,	,,
ष०	,,	पुंसोः	पुंसाम्
स०	पुंसि	,,	पुंसु
सम्बो०	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः

निष्पत्तिः—पुमस्+सु इस स्थितिमें—

१५८ पुंसोऽसुङ् ७। १। ८॥

सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात्।

सर्वनामस्थान विवक्षित होनेपर 'पुंस्' को 'असुङ्' आदेश होता है।

'उङ्' लोप करके पुमस्+सु सू० १११ से 'सु' का लोप, सू० १४३ से उपधाको दीर्घ तथा सू० १४४ से 'नुम्' करके 'पुमान्'।

प्रयोग—

पुमान्-विहाय कामान्यः सर्वान् पुमाँश्चरति निःस्पृह। (२। ७१)

पुंसः-ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। (२। ६२)

स्-अन्त 'चन्द्रमस्'

प्र०	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	,,	चन्द्रमसः
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च०	चन्द्रमसे	,,	चन्द्रमोभ्यः
पं०	चन्द्रमसः	,,	,,
ष०	चन्द्रमसः	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
स०	चन्द्रमसि	चन्द्रमसोः	चन्द्रमस्सु
सम्बो०	हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः

निष्पत्तिः—चन्द्रमस्+सु इस स्थितिमें 'सु' का लोप उपधाको दीर्घ 'स्' को 'र्' और 'र्' को विसर्ग करके चन्द्रमाः। चन्द्रमस्+भ्याम्में 'स्' को 'रु', 'रु' को 'उ' (हशि च), 'उ' को गुण करके 'चन्द्रमोभ्याम्'।

अनुरूप शब्द—

उत्तमौजस्-अच्छे बलवाला पुरोधस्-पुरोहित
उशनस्-नीतिशास्त्र जाननेवाला उच्चैःश्रवस्-इन्द्रका घोड़ा

प्रयोग—

चन्द्रमसि = यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्। (१५। १२)
उत्तमौजाः = युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्। (१। ६)
उशना = मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः। (१०। ३७)
पुरोधसाम् = पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्। (१०। २४)
उच्चैःश्रवसम् = उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्। (१०। २७)

इति हलन्तपुँल्लिङ्गाः

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गाः

चकारान्त 'वाच्' वाणी

प्र०	वाक्-वाग्	वाचौ	वाचः
द्वि०	वाचम्	,,	,,
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	,,	वाग्भ्यः
पं०	वाचः	,,	,,
ष०	,,	वाचोः	वाचाम्
स०	वाचि	,,	वाक्षु
सम्बो०	प्रथमावत्		

निष्पत्तिः—वाच्+सु इस स्थितिमें सू० १११ से 'सु' का लोप करके सू० ४५ से 'च्' को 'क्' करके 'वाक्' रूप निष्पन्न हुआ। "झलां जशोऽन्ते" सूत्रसे 'क' को 'ग' हुआ तथा "वाऽवसाने" सूत्रसे विकल्पसे 'ग' को 'क' हुआ। वाक्, वाग् दो रूप बने। वाच्+औ=वाचौ। वाक्+भ्याम्में भी 'क्' को सू० ३९ से 'ग्' करके 'वाग्भ्याम्'। वाच्+सु इस स्थितिमें सू० ४५ से 'च्' को 'क्' तथा सू० ५० से 'स्' को 'ष्' तथा क्+ष्=क्ष् करके 'वाक्षु'।

अनुरूप शब्द—

ऋच् = ऋचा (ऋग्वेदका मन्त्र) त्वच्= चमड़ी

प्रयोग—

वाक्-कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा। (१०। ३४)
वाचम्-यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः। (२। ४२)
त्वक्-गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते। (१। ३०)
ऋक्-वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च। (९। १७)

पकारान्त 'अप्' (नित्य बहुवचनमें)

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	×	आपः
द्वि०	×	अपः
तृ०	×	अद्भिः
च०	×	अद्भ्यः
पं०	×	,,
ष०	×	अपाम्
स०	×	अप्सु
सम्बो०	×	हे अपः!

अप्+जस् इस स्थितिमें सू० ११९ से उपधाको दीर्घ करके 'स्' को 'र्' तथा 'र्' को विसर्ग करके 'आपः'। अप्+भिस्—इस स्थितिमें—

१५९ अपो भि ७। ४। ४८॥

अपस्तकारोऽन्तादेशः भादिप्रत्यये परे।

'अप्'को 'तकार' अन्तादेश होता है, भादि प्रत्यय परे होनेपर।

'प्' को 'त्' और 'त्' को 'द्' करके अद्भिः।

प्रयोग—

आपः-न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। (२। २३)

आपः-समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्। (२। ७०)

अप्सु-रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः। (७। ८)

रकारान्त 'गिर्' (वाणी)

प्र०	गीः	गिरौ	गिरः
द्वि०	गिरम्	,,	,,
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
च०	गिरे	,,	गीर्भ्यः
पं०	गिरः	,,	,,
ष०	,,	गिरोः	गिराम्

स०	गिरि	गिरोः	गीर्षु

सम्बो० प्रथमावत्।

निष्पत्तिः—गिर्+सु इस स्थितिमें—

१६० र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८। २। ७६॥

रेफवान्तयोर्धात्वोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते।

रेफ (रान्त) तथा वान्त धातुकी उपधाभूत 'इक्' को दीर्घ होता है पदान्तमें। इससे गीर्+सु सू० १११ से 'सु' का लोप 'र्' को विसर्ग करके 'गीः'।

गिर्+सु इस स्थितिमें उपधाको दीर्घ, सू० ५० से 'स्' को 'ष्' करके 'गीर्षु'।

प्रयोग—

गिराम्-महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्। (१०। २५)

वकारान्त 'दिव्'

प्र०	द्यौः	दिवौ	दिवः
द्वि०	दिवम्	,,	,,
तृ०	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
च०	दिवे	,,	द्युभ्यः
पं०	दिवः	,,	,,
ष०	,,	दिवोः	दिवाम्
स०	दिवि	,,	द्युषु

सम्बो० प्रथमावत्।

निष्पत्तिः—दिव्+सु इस स्थितिमें—

१६१ दिव औत् ७। १। ८४॥

दिविति प्रातिपदिकस्यौत् स्यात्सौ।

प्रातिपदिक 'दिव्' को 'औत्' होता है 'सु' परे हो तो। 'व्' को 'औ' फिर 'यण्' तथा 'स्' को विसर्ग करके 'द्यौः'।

दिव्+भ्याम्-इस स्थितिमें—

१६२ दिव उत् ६। १। १३१॥

दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात्पदान्ते।

'दिव्' को उकार अन्तादेश होता है पदान्तमें। 'व्' को 'उ' और फिर 'यण्' करके 'द्युभ्याम्'।

प्रयोग—

दिवि-ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्। (९। २०)

शकारान्त 'दिश्'

प्र०	दिक्-ग्	दिशौ	दिशः
द्वि०	दिशम्	,,	,,
तृ०	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
च०	दिशे	,,	दिग्भ्यः
पं०	दिशः	,,	,,
ष०	,,	दिशोः	दिशाम्
स०	दिशि	,,	दिक्षु
सम्बो०	प्रथमावत्।		

निष्पत्तिः—दिश्+सु इस स्थितिमें—

१६३ ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ३। २। ५९॥

एभ्यः क्विन्। कनावितौ।

ऋत्विज्-आदिसे 'क्विन्' होता है। 'क्विन्' प्रत्ययमें 'क्' और 'न्' का लोप होता है और व का 'वेरपृक्तस्य' से।

सू० १५४ से 'दिक्' तथा सू० ४६ से 'दिग्' दो रूप बनते हैं।

दिक्+सु सूत्र ५०से षत्व तथा 'क्' 'ष्' को 'क्ष्' करके 'दिक्षु'।

प्रयोग—

दिशः-दिशो न जाने न लभे च शर्म। (११। २५)

दिशः-रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति। (११। ३६)

इति हलन्तस्त्रीलिङ्गाः

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गाः

नकारान्त 'अहन्' (दिन)

प्र०	अहः	अहनी (अह्नी)	अहानि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
च०	अह्ने	,,	अहोभ्यः
पं०	अह्नः	,,	,,
ष०	,,	अह्नोः	अह्नाम्
स०	अह्नि	अह्नोः	अहःसु

सम्बो० हे अहन्-हे अहः, हे अह्नी-हे अहनी, हे अहानि

निष्पत्तिः-अहन्+सु इस स्थितिमें—'सु' का लोप करके—

१६४ रोऽसुपि ८। २। ६९॥

अह्नो रेफादेशः स्यान्न तु सुपि।

'अहन्' शब्दको रेफादेश होता है न कि 'सुप्' परे होनेपर। इससे 'न्' को 'र्' करके तथा 'र्' को विसर्ग करके 'अहः'। अहन्+औ इस स्थितिमें सू० १३६ से औको (शी) ई करके सूत्र १४८ से 'अन्' के अकारका वैकल्पिक लोप होनेसे अह्नी-अहनी दो रूप बनते हैं। अहन्+भ्याम्—इस स्थितिमें—

१६५ अहन् ८। २। ६८॥

अहन्नित्यस्य रुः पदान्ते।

'अहन्' शब्दको 'रु' आदेश होता है, पदान्तमें। इससे 'रु' तथा सू० ६४ से 'उ' और उसे गुण करके 'अहोभ्याम्'।

सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः। (वार्तिक)

सम्बुद्धिमें नपुंसकलिङ्गवाची शब्दोंके नकारका विकल्पसे लोप होता है।

'न्' का विकल्पसे लोप करके 'अहः' 'अहन्' दो रूप बनते हैं।

नकारान्त 'जन्मन्'

प्र०	जन्म	जन्मनी	जन्मानि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	जन्मना	जन्मभ्याम्	जन्मभिः
च०	जन्मने	,,	जन्मभ्यः
पं०	जन्मनः	,,	,,
ष०	,,	जन्मनोः	जन्मनाम्
स०	जन्मनि	,,	जन्मसु
सम्बो०	प्रथमावत्।		

निष्पत्तिः—जन्मन्+सु इस स्थितिमें सू० १११ से 'सु' तथा ११२ से 'न्' का लोप करके जन्म। जन्मन्+औ में (शी) 'ई' करके जन्मनी।

प्रयोग—

जन्म–जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। (२। २७)

जन्मनाम्–बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते। (७। १९)

नकारान्त 'कर्मन्'

प्र०	कर्म	कर्मणी	कर्माणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	कर्मणा	कर्मभ्याम्	कर्मभिः
च०	कर्मणे	,,	कर्मभ्यः
पं०	कर्मणः	,,	,,
ष०	,,	कर्मणोः	कर्मणाम्
स०	कर्मणि	कर्मणोः	कर्मसु
सम्बो०	प्रथमावत्।		

निष्पत्तिः—'जन्मन्' वत्।

अनुरूप शब्द—

ब्रह्मन् = ब्रह्मतत्त्व **शर्मन्** = सुख **वर्त्मन्** = मार्ग

प्रयोग—

कर्म-दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय। (२। ४९)
कर्मणा-कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। (३। २०)
कर्मणः-ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन। (३। १)
कर्मणि-तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव। (३। १)
वर्त्म-मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ! सर्वशः। (३। २३)
शर्म-दिशो न जाने न लभे च शर्म,
प्रसीद देवेश! जगन्निवास। (११। २५)
ब्रह्मणि-ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः। (५। १०)

तकारान्त 'जगत्'

प्र०	जगत्-द्	जगती	जगन्ति
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
च०	जगते	,,	जगद्भ्यः
पं०	जगतः	,,	,,
ष०	,,	जगतोः	जगताम्
स०	जगति	,,	जगत्सु
सम्बो०	प्रथमावत्।		

निष्पत्तिः—जगत्+सु इस स्थितिमें सू० १११ से 'सु' का लोप तथा सू० ३९ से पदान्त 'त्' को 'द्' करके तथा चर्त्व करके 'जगत्-जगद्' दो रूप बनते हैं।

जगत्+जस् इस स्थितिमें 'जस्' को 'शि' करके जगत्+(शि) इ तथा सू० १४४ से (नुम्) 'न्' करके 'जगन्ति'।

प्रयोग—

जगत्-जीवभूतां महाबाहो! ययेदं धार्यते जगत्। (७। ५)

जगतः-अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। (७। ६)

अनुरूप शब्द—

महत् = बड़ा **अन्तवत्** = अन्तवाला **अनादिमत्** = न आदिवाला

प्रयोग—

महत्-अहो! बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्। (१। ४५)

महतः-स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (२। ४०)

अनादिमत्-अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते। (१३। १२)

अन्तवत्-अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्। (७। २३)

अत्-अन्त 'नश्यत्'

प्र०	नश्यत्	नश्यन्ती	नश्यन्ति
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	नश्यता	नश्यद्भ्याम्	नश्यद्भिः
च०	नश्यते	,,	नश्यद्भ्यः
पं०	नश्यतः	,,	,,
ष०	,,	नश्यतोः	नश्यताम्
स०	नश्यति	,,	नश्यत्सु
सम्बो०	प्रथमावत्।		

१६६ शप्श्यनोर्नित्यम् ७। १। ८१॥

शप्श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनद्योः।

शप् और श्यन्के अकारसे परे 'शतृ' का जो अवयव उसके अन्तको 'नुम्' होता है 'शी' और 'नदी' परे हो तो।

इससे 'नुम्' करके नश्यन्ती रूप बना।

प्रयोग

विनश्यत्सु-विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति। (१३। २७)

इस्-अन्त 'हविस्'

प्र०	हविः	हविषी	हवींषि

द्वि०	हविः	हविषी	हवींषि
तृ०	हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भिः
च०	हविषे	,,	हविर्भ्यः
पं०	हविषः	,,	,,
ष०	,,	हविषोः	हविषाम्
स०	हविषि	,,	हविष्षु
सम्बो०	प्रथमावत्।		

निष्पत्तिः—हविस्+सु इस स्थितिमें सू० १११ से 'सु' का लोप करके 'स्' को 'र्' और 'र्' को विसर्ग करके 'हविः'। हविस्+औ=हविस्+(शी) ई सू० ५० से 'षत्व' करके 'हविषी'। हविस्+जस्=हविस्+(शि) इ 'नुम्' और 'न्' को अनुस्वार करके 'हवींसि' इस स्थितिमें—

१६७ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८। ३। ५८॥

एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इणुकुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात्।

नुम्, विसर्ग, शर् इनमेंसे एक या बहुतोंके व्यवधानमें भी 'इण्', 'कवर्ग से परे 'स्' को 'ष्' होता है। इससे 'ष् करके हवींषि'।

अनुरूप शब्द—'ज्योतिस्' (जोत)

प्रयोग—

हविः-ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। (४। २४)
ज्योतिषाम्-ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। (१३। १७)
,, -आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्। (१०। २१)

उस्-अन्त 'धनुस्'

प्र०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वि०	,,	,,	,,

तृ०	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
च०	धनुषे	,,	धनुर्भ्यः
पं०	धनुषः	,,	,,
ष०	,,	धनुषोः	धनुषाम्
स०	धनुषि	,,	धनुष्षु

सम्बो० प्रथमावत्।

निष्पत्तिः—'हविस्' वत्।

अनुरूप शब्द—

चक्षुस् = नेत्र यजुस् = यजुर्वेद

प्रयोग—

धनुः-प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः। (१। २०)
चक्षुः-स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः। (५। २७)
यजुः-वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्सामयजुरेव च। (९। १७)

सकारान्त 'मनस्'

प्र०	मनः	मनसी	मनांसि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
च०	मनसे	,,	मनोभ्यः
पं०	मनसः	,,	,,
ष०	,,	मनसोः	मनसाम्
स०	मनसि	,,	मनस्सु

सम्बो० प्रथमावत्।

निष्पत्तिः—मनस्+सु इस स्थितिमें सू० १११ से 'सु' का लोप, पदान्त 'स्' को 'र्' और 'र्' को विसर्ग करके 'मनः'। मनस्+जस्=मनस्+(शि) इ=फिर सू० १३९ से 'नुम्' सू० १०९

से उपधाको दीर्घ और 'न्' को अनुस्वार करके 'मनांसि' रूप निष्पन्न हुआ।

अनुरूप शब्द—

तपस् = तप	**शिरस्** = सिर	**तेजस्** = तेज
तमस् = अँधेरा	**रहस्** = एकान्त	**एधस्** = ईंधन
छन्दस् = वेद	**रजस्** = धूल	**ओजस्** = बल
नभस् = आकाश	**वचस्** = वचन	**सरस्** = तालाब
यशस् = कीर्ति	**रक्षस्** = राक्षस	**स्त्रोतस्** = झरना
चेतस् = चित्त	**वासस्** = वस्त्र	

प्रयोग

तेजः-तेजश्चास्मि विभावसौ। (७। ९)
तपः-तपश्चास्मि तपस्विषु। (७। ९)
तमसा-अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। (१८। ३२)
छन्दांसि-छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्। (१५। १)
वचः-यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम। (११। १)
नभः-नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्। (१। १९)
यशः-अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः। (१०। ५)
चेतसा-अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना। (८। ८)
शिरसा-प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत। (११। १४)
रहसि-योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः। (६। १०)
रजः-सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः। (१४। ५)
रक्षांसि-रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति। (११। ३६)
वासांसि-वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। (२। २२)
एधांसि-यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन। (४। ३७)

ओजसा-गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा। (१५। १३)
सरसाम्-सरसामस्मि सागरः। (१०। २४)
स्त्रोतसाम्-स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी। (१०। ३१)

इति हलन्तनपुंसकलिङ्गाः

अथ सर्वनामप्रकरणम्

१६८ सर्वादीनि सर्वनामानि १। १। २७॥

सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः।
सर्वादिगणपठित शब्दोंकी सर्वनाम संज्ञा होती है।

'सर्व' पुँल्लिङ्ग

प्र०	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वि०	सर्वम्	,,	सर्वान्
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
च०	सर्वस्मै	,,	सर्वेभ्यः
पं०	सर्वस्मात्	,,	,,
ष०	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
स०	सर्वस्मिन्	,,	सर्वेषु
सम्बो०	हे सर्व!	हे सर्वौ!	हे सर्वे!

१६९ जसः शी ७। १। १७॥

अदन्तात्सर्वनाम्नो जसः शी स्यात्।
अदन्त सर्वनामसे परे 'जस्' को 'शी' आदेश होता है।
सर्व+जस्, सू० १६८ से (शी) ई फिर सू० ३२ 'गुण' करके 'सर्वे'।

१७० सर्वनाम्नः स्मै ७। १। १४॥

अतः सर्वनाम्नो ङे स्मै।
अदन्त सर्वनामसे परे 'ङे' को 'स्मै' आदेश होता है।
इससे 'ङे' के स्थानमें 'स्मै' करके 'सर्वस्मै'।
सर्व+ङसि तथा सर्व+ङि इस स्थितिमें—

१७१ ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ७। १। १५॥

अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः।

अदन्त सर्वनामसे परे 'ङसि' को 'स्मात्' और 'ङि' को 'स्मिन्' आदेश होता है। इससे 'सर्वस्मात्' 'सर्वस्मिन्' दो रूप निष्पन्न हुए।

सर्व+आम् इस स्थितिमें सू० ९५ से (नुट्) 'न्' का आगम प्राप्त होनेपर—

१७२ आमि सर्वनाम्नः सुट् ७। १। ५२

अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः।

अवर्णान्त अङ्गसे परे सर्वनामसे विहित 'आम्' को 'सुट्' का आगम होता है।

इससे 'स्' करके 'सर्वसाम्' फिर सू० ९३ से 'ए' और सू० ५० से 'ष' करके 'सर्वेषाम्'। शेष 'रामवत्'।

प्रयोग—

सर्वः, सर्वम्-सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः। (११। ४०)
सर्वे-सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः। (११। ३६)
सर्वान्-तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान्। (१। २७)
सर्वैः-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। (१५। १५)
सर्वेभ्यः-अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। (४। ३६)
सर्वेषाम्-भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्। (१। २५)
सर्वेषु-तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः। (२। ४६)
सर्व-नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व! (११। ४०)

'सर्व' नपुंसकलिङ्ग

प्र०	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वि०	,,	,,	,,

निष्पत्तिः-सर्वपुल्लिङ्गवत्।

प्रयोग—

सर्वम्-सर्वं कर्माखिलं पार्थ! ज्ञाने परिसमाप्यते। (४। ३३)
सर्वाः-पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः। (१५। १३)

'सर्वा' स्त्रीलिङ्ग

प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वि०	सर्वाम्	,,	,,
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
च०	सर्वस्यै	,,	सर्वाभ्यः
पं०	सर्वस्याः	,,	,,
ष०	,,	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	,,	सर्वासु
सम्बो०	हे सर्वे!	हे सर्वे!	हे सर्वाः

निष्पत्तिः—सर्वा+ङे (स्त्रीत्व होनेके 'टाप्' आ) इस स्थितिमें—

१७३ सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७। ३। ११४॥

आबन्तात् सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः।
आबन्त सर्वनामसे परे 'ङित्' को 'स्याट्' का आगम होता है और 'आप्' को ह्रस्व होता है। सर्वस्यै, सर्वस्याः, सर्वासाम्, सर्वस्याम् रूप निष्पन्न हुए।

प्रयोग—

सर्वाः-अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे। (८। १८)
सर्वाः-पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः। (१५। १३)

'तद्' पुँल्लिङ्ग

प्र०	सः	तौ	ते
द्वि०	तम्	,,	तान्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः
च०	तस्मै	,,	तेभ्यः
पं०	तस्मात्	,,	,,
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्

स०	तस्मिन्	तयोः	तेषु
सम्बो०	त्यदादीनां सम्बोधनं नास्ति।		

निष्पत्तिः—तद्+सु इस स्थितिमें—

१७४ त्यदादीनामः ७। २। १०२॥

एषामकारोऽन्तादेशः विभक्तौ।

विभक्ति परे रहते त्यदादिको अकार अन्तादेश होता है।

१७५ तदोः सः सावनन्त्ययोः ७। २। १०६॥

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात् सौ।

'सु' परे रहते त्यदादिके अन्त्यभिन्न 'त' तथा 'द' को 'स' होता है।

'सु'के 'उ' का लोप और 'स्' को विसर्ग करके 'सः'। शेष सर्ववत्।

प्रयोग—

सः-स शब्दस्तुमुलोऽभवत्। (१। १३)

तौ-उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते। (२। १९)

ते-देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। (३। ११)

तम्-ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः। (४। १९)

तेन-अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। (५। १५)

तैः-इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। (५। १९)

तस्मात्-तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि। (२। २७)

तस्य-तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्। (४। १३)

तेषाम्-तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। (९। २२)

तस्मिन्-ममयोनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। (१४। ३)

तेषु-ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। (२। ६२)

'तद्' नपुंसकलिङ्ग

प्र०	तत्	ते	तानि
द्वि०	,,	,,	,,

निष्पत्तिः—(सर्व नपुंसकवत्)।

प्रयोग—

तत्-यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। (८। २१)
तत्-यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। (३। २१)
तानि-तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः। (२। ६१)

'तत्' स्त्रीलिङ्ग

प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	,,	,,
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	,,	ताभ्यः
पं०	तस्याः	,,	,,
ष०	,,	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	,,	तासु
सम्बो०	सम्बोधन नहीं होता।		

निष्पत्तिः—सर्व (स्त्रीवत्)।

प्रयोग—

सा-यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः। (२। ६९)
ताम्-तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्। (७। २१)
तया-स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते। (७। २२)
तासाम्-तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता। (१४। ४)
तस्याम्-या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। (२। ६९)

'एतद्' पुँल्लिङ्ग

प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम्	,,	एतान्
तृ०	एतेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	,,	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्	,,	,,

ष०	एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	,,	एतेषु
सम्बो०	सम्बोधन नहीं।		

निष्पत्तिः—तद् पुँल्लिङ्गवत्। केवल प्रथमाके एकवचनमें सू० ५० से षत्व करके 'एषः'।

प्रयोग—

एष-काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। (३। ३७)
एते-उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। (७। १८)
एतान्-एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन। (१। ३५)
एतेन-आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा। (३। ३९)
एतेषाम्-पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्। (१। १०)

'एतद्' नपुंसकलिङ्ग

प्र०	एतद्	एते	एतानि
द्वि०	,,	,,	,, शेष पुँल्लिङ्गवत्

प्रयोग—

एतत्-क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। (२। ३)
एतानि-एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥ (१८। ६)

'एतद्' स्त्रीलिङ्ग

प्र०	एषा	एते	एताः
द्वि०	एताम्	,,	,,
तृ०	एतया	एताभ्याम्	एताभिः
च०	एतस्यै	,,	एताभ्यः
पं०	एतस्याः	,,	,,
ष०	,,	एतयोः	एतासाम्
स०	एतस्याम्	,,	एतासु
सम्बो०	सम्बोधन नहीं होता।		

प्रयोग—

एषा-दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। (७। १४)

एताम्-मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। (७। १४)

'किम्' पुँल्लिङ्ग

प्र०	कः	कौ	के
द्वि०	कम्	,,	कान्
तृ०	केन	काभ्याम्	कैः
च०	कस्मै	,,	केभ्यः
पं०	कस्मात्	,,	,,
ष०	कस्य	कयोः	केषाम्
स०	कस्मिन्	,,	केषु
सम्बो०	नहीं होता।		

निष्पत्तिः-किम्+सु=इस स्थितिमें—

१७६ किमः कः ७। २। १०३॥

किमः कः स्याद् विभक्तौ।

'किम्' को 'क' आदेश होता है, विभक्ति परे होनेपर। 'स्' को 'र' और 'र्' को विसर्ग करके 'कः' रूप बनता है।

प्रयोग—

कः-अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन। (८। २)

कम्-कथं स पुरुषः पार्थ! कं घातयति हन्ति कम्। (२। २१)

कैः-कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे। (१। २२)

कस्मात्-कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्। (११। ३७)

केषु-केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया। (१०। १७)

'किम्' नपुंसकलिङ्ग

प्र०	किम्	के	कानि	
द्वि०	,,	,,	,,	शेष पुँल्लिङ्गवत्।

प्रयोग—

किम्-किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा। (१। ३२)

'किम्' स्त्रीलिङ्ग

प्र०	का	के	काः
द्वि०	काम्	,,	,,
तृ०	कया	काभ्याम्	काभिः
च०	कस्यै	,,	काभ्यः
पं०	कस्याः	,,	,,
ष०	,,	कयोः	कासाम्
स०	कस्याम्	,,	कासु
सम्बो०	नहीं होता।		

प्रयोग—

का-निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन। (१। ३६)

काम्-अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति। (६। ३७)

'यद्' पुँल्लिङ्ग

प्र०	यः	यौ	ये
द्वि०	यम्	,,	यान्
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	,,	येभ्यः
पं०	यस्मात्	,,	,,
ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
स०	यस्मिन्	,,	येषु
सम्बो०	नहीं होता।		

प्रयोग—

यः-य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्। (२। १९)

यान्-यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः। (२। ६)

येन-अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्। (२। १७)
यस्मात्-यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः। (१२। १५)
येषाम्-ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। (५। १६)
यस्मिन्-ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः। (१५। ४)

'यद्' नपुंसकलिङ्ग

प्र०	यद्	ये	यानि	
द्वि०	,,	,,	,,	शेष पुँल्लिङ्गवत्।

प्रयोग—

यत्-यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। (३। २१)

'यद्' स्त्रीलिङ्ग

प्र०	या	ये	याः
द्वि०	याम्	,,	,,
तृ०	यया	याभ्याम्	याभिः
च०	यस्यै	,,	याभ्यः
पं०	यस्याः	,,	,,
ष०	,,	ययोः	यासाम्
स०	यस्याम्	,,	यासु
सम्बो०	नहीं होता।		

निष्पत्तिः—'तद्' स्त्रीलिङ्गवत्।

प्रयोग—

या-या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। (२। ६९)
याम्-यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति। (७। २१)
यया-बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि। (२। ३९)
याभिः-याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि। (१०। १६)
यस्याम्-यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः। (२। ६९)

'इदम्' पुँल्लिङ्ग

प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्	,,	इमान्
तृ०	अनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	,,	एभ्यः
पं०	अस्मात्	,,	,,
ष०	अस्य	अनयोः	एषाम्
स०	अस्मिन्	,,	एषु
सम्बो०	नहीं होता।		

प्रयोग—

इमे-न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। (२। १२)
इमान्-याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि। (१०। १६)
एभिः-त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। (७। १३)
एभ्यः-मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्। (७। १३)
एषाम्-पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः। (१। ४२)
अस्मिन्-अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन। (८। २)

निष्पत्तिः—इदम्+सु-इस स्थितिमें—

१७७ इदोऽय् पुंसि ७। २। १११॥

इदम इदोऽय् सौ पुंसि।

'इदम्' के 'इद्' को 'अय्' होता है, 'सु' परे रहते पुँल्लिङ्गमें।

'इद्' को 'अय्' तथा सू० १११ से 'सु' का लोप करके 'अयम्'।

इदम्+औ इस स्थितिमें—

१७८ अतो गुणे ६। १। ९७॥

अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः स्यात्।

अपदान्त 'अ' से गुण परे रहते पररूप एकादेश होता है।

१७९ दश्च ७। २। १०९॥

इदमो दस्य मः स्यात् विभक्तौ।

'इदम्' के 'द' को 'म' होता है, विभक्ति परे रहते।

'द्' को 'म्' अत्व तथा वृद्धि करके 'इमौ'।

इदम्+आ इस स्थितिमें—

१८० अनाप्यकः ७। २। ११२॥

अककारस्येदम् इदोऽनापि विभक्तौ।

ककाररहित 'इदम्' के 'इद्' को 'अन्' होता है, 'आप्' विभक्ति परे रहते ('आप्' कहनेसे तृतीयासे सप्तमीतकका बोध होता है।) सू० ८७ से इन तथा गुण करके 'अनेन'।

इदम्+भ्याम् इस स्थितिमें सू० १७३ से 'अ'।

१८१ हलि लोपः ७। २। ११३॥

अककारस्येदम इदो लोप आपि हलादौ।

हलादि 'आप्' विभक्ति परे होनेपर ककाररहित इदम्के 'इद्' का लोप होता है और सू० ९० से 'अ' को दीर्घ करके 'आभ्याम्'।

इदम्+भिस् इस स्थितिमें 'इद्' का लोप होनेपर शेष अ+भिस्में भिस्को 'ऐस्' प्राप्त होनेपर—

१८२ नेदमदसोरकोः ७। १। ११॥

अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न।

ककाररहित 'इदम्' और 'अदस्' से परे 'भिस्' को 'ऐस्' नहीं होता। ऐस् न होकर सू० ९३ से 'ए' करके 'एभिः'।

'इदम्' नपुंसकलिङ्ग

प्र०	इदम्	इमे	इमानि	
द्वि०	,,	,,	,,	शेष पुँल्लिङ्गवत्।

प्रयोग—

इदम्-कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्। (२। २)

'इदम्' स्त्रीलिङ्ग

प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम्	,,	इमाः
तृ०	अनया	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	,,	आभ्यः
पं०	अस्याः	आभ्याम्	,,
ष०	,,	अनयोः	आसाम्
स०	अस्याम्	,,	आसु
सम्बो०	नहीं होता।		

प्रयोग—

इयम्- भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ (७।४)

इमाम्- एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु। (२। ३९)

इमाः-संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः। (३। २४)

अस्याम्- एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥ (२।७२)

निष्पत्तिः—इदम्+सु इस स्थितिमें—

१८३ यः सौ ७। २। ११०॥

इदमो दस्य यः।

'सु' परे रहते इदम् शब्दके 'द' को 'य' होता है, स्त्रीलिङ्गमें। इससे 'द' को 'य' सू० १११ से 'सु' का लोप करके 'इयम्'।

'अदस्' पुँल्लिङ्ग

प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	,,	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	,,	अमीभ्यः

पं०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	,,	अमीषु
सम्बो०	नहीं होता।		

'अदस्' नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अदः	अमू	अमूनि	
द्वि०	,,	,,	,,	शेष पुँल्लिङ्गवत्।

निष्पत्तिः—अदस्+सु इस स्थितिमें—

१८४ अदस् औ सुलोपश्च ७। २। १०७॥

अदस् औकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे सुलोपश्च।

'सु' परे रहते 'अदस्' के अन्तिम 'अल्' को 'औ' होता है और 'सु' का लोप। इससे अन्तिमको 'औ' तथा 'सु' का लोप करके 'असौ' रूप सिद्ध हुआ।

'अदस्' स्त्रीलिङ्ग

प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमूम्	,,	,,
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	,,	अमूभ्यः
पं०	अमुष्याः	,,	,,
ष०	,,	अमुयोः	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	,,	अमूषु
सम्बो०	नहीं होता।		

निष्पत्तिः—अदस्+टा इस स्थितिमें अत्व, पररूप, टाप्, सवर्ण दीर्घ, फिर सू० १२७ से ए तथा फिर 'ए' को 'अय्' करके 'अमुया'।

अदस्+ङे इस स्थितिमें त्यदादि होनेसे अत्व, पररूप, टाप्, सवर्ण दीर्घ करनेपर अदा+ए फिर सू० १७२ से 'स्याट्' 'आप्'

को ह्रस्व, वृद्धि, मत्व, षत्व करनेपर 'अमुष्यै'।

प्रयोग—

असौ-भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ। (११। २६)

अमी-अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः। (११। २६)

'युष्मद्' (तीनों लिङ्गोंमें समान)

प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम् (त्वा)	,, (वाम्)	युष्मान् (वः)
तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम् (ते)	,, (वाम्)	युष्मभ्यम् (वः)
पं०	त्वत्	,,	युष्मत्
ष०	तव (ते)	युवयोः (वाम्)	युष्माकम् (वः)
स०	त्वयि	,,	युष्मासु

'अस्मद्' (तीनों लिङ्गोंमें समान)

प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम् (मा)	,, (नौ)	अस्मान् (नः)
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०	मह्यम् (मे)	,, (नौ)	अस्मभ्यम् (नः)
पं०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
ष०	मम (मे)	आवयोः (नौ)	अस्माकम् (नः)
स०	मयि	,,	अस्मासु

त्वम्-अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। (२। ११)

त्वाम्-पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः। (२। ७)

त्वा-कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्। (२। २)

त्वया-यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम। (११। १)

तव-पश्यामि देवांस्तव देव देहे। (११। १५)

ते-शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। (२। ७)

मे-यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे। (२। ७)
ते-माम्-शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। (२। ७)
मया-चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (४। १३)
नः-किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा। (१। ३२)
त्वयि-क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। (२। ३)

निष्पत्तिः—युष्मद्+सु, अस्मद्+सु—इस स्थितिमें—

१८५ ङेप्रथमयोरम् ७। १। २८॥

युष्मदस्मद्भ्यां परस्य 'ङे' इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः।

'युष्मद्' 'अस्मद्' से परे 'ङे' और प्रथमा-द्वितीया विभक्तिको 'अम्' आदेश होता है।

१८६ त्वाहौ सौ ७। २। ९४॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहौ आदेशौ स्तः।

'युष्मद्' 'अस्मद्' के 'युष्म' और 'अस्म' को 'त्व' और 'अह' आदेश होता है, सु परे रहनेपर।

१८७ शेषे लोपः ७। २। ९०॥

एतयोष्टिलोपः।

युष्मद्-अस्मद्की 'टि' (अद्) का लोप होता है 'त्वम्' अहम्'।

१८८ युवावौ द्विवचने ७। २। ९२॥

द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ।

द्वित्वकी विवक्षामें 'युष्म्' 'अस्म्' को 'युव' 'आव' आदेश होते हैं।

'युवाम्, आवाम्' रूप निष्पन्न हुए।

१८९ यूयवयौ जसि ७। २। ९३॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य।

'जस्' परे रहते 'युष्म्' 'अस्म्' को 'यूय' 'वय' आदेश होते हैं। 'यूयम्', 'वयम्'।

१९० त्वमावेकवचने ७। २। ९७॥

एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ।

एकत्वकी विवक्षामें 'युष्म्' 'अस्म्' को 'त्व' 'म' आदेश होते हैं।

१९१ द्वितीयायां च ७। २। ८७॥

अनयोरात् स्यात्।

द्वितीया विभक्ति परे होनेपर 'युष्मद्' 'अस्मद्' को 'आ' अन्तादेश होता है। त्वाम्। माम्।

१९२ शसो न ७। १। २९॥

आभ्यां शसो नः स्यात्। अमोऽपवादः।

'युष्मद्' 'अस्मद्' के 'शस्' को 'न' आदेश होता है।

संयोगान्तका लोप करके 'युष्मान्' 'अस्मान्'।

१९३ योऽचि ७। २। ८९॥

अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः।

'युष्मद्' 'अस्मद्' को 'य' आदेश होता है अनादेश अजादि विभक्ति परे हो तो। 'त्वया', 'मया'।

१९४ युष्मदस्मदोरनादेशे ७। २। ८६॥

अनयोरात् स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ।

'युष्मद्' 'अस्मद्' को आकार आदेश होता है, अनादेश हलादि विभक्ति परे हो तो। 'युवाभ्याम्', 'आवाभ्याम्'।

१९५ तुभ्यमह्यौ ङयि ७। २। ९५॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य।

'युष्म्' 'अस्म्' को 'तुभ्य' 'मह्य' आदेश होते हैं, 'ङे' परे हो तो। टिलोप करके 'तुभ्यम्', 'मह्यम्'।

१९६ भ्यसोऽभ्यम् ७। १। ३०॥

आभ्यां परस्य।

'युष्मद्' 'अस्मद्' से परे 'भ्यस्' को 'अभ्यम्' आदेश होता है। 'युष्मभ्यम्', 'अस्मभ्यम्'।

१९७ एकवचनस्य च ७। १। ३२॥

आभ्यां ङसेरत्।

'युष्मद्' 'अस्मद्' से 'ङसि' को 'अत्' होता है। 'त्वत्' 'मत्'।

१९८ पञ्चम्या अत् ७। १। ३१॥

आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत् स्यात्।

'युष्मद्' 'अस्मद्' से परे पञ्चमीके 'भ्यस्' को 'अत्' होता है। 'युष्मत्', 'अस्मत्'।

१९९ तवममौ ङसि ७। २। ९६॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि।

'ङस्' परे हो तो 'युष्म' 'अस्म' को 'तव' 'मम' आदेश होते हैं।

२०० युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ७। १। २७॥

'युष्मद्' 'अस्मद्' से परे 'ङस्' को 'अश्' आदेश होता है। 'तव', 'मम'।

२०१ साम आकम् ७। १। ३३॥

आभ्यां परस्य साम आकं स्यात्।

'युष्मद्' 'अस्मद्' से परे 'साम्' को 'आकम्', आदेश होता है। 'युष्माकम्', 'अस्माकम्', त्वयि, मयि, युवयोः, आवयोः, युष्मासु, अस्मासुमें सू० १९३ से 'आत्व'।

२०२ युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ ८। १। २०॥

पदात् परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वां नौ इत्यादेशौ स्तः।

पदसे परे पादके अनादिमें स्थित षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीया-सम्बन्धी 'युष्मद्' 'अस्मद्' शब्दोंको 'वाम्' 'नौ' आदेश होते हैं।

तीनों विभक्तियोंके बहुवचनमें 'वः' 'नः' और द्विवचनमें 'वाम्' 'नौ' होते हैं।

२०३ बहुवचनस्य वस्नसौ ८। १। २१॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्-नसौ स्तः।

बहुवचनमें तीनों विभक्तियोंमें पूर्ववत् 'वस्' 'नस्' आदेश होते हैं। 'वः' 'नः'।

२०४ त्वामौ द्वितीयायाः ८। १। २३॥

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्तः। 'त्वा' 'मा'।

युष्मद्-अस्मद्की द्वितीया विभक्तिके एकवचनमें 'त्वा' 'मा' आदेश होते हैं।

निम्नलिखित सर्वनामोंके रूप तीनों लिङ्गोंमें 'सर्व' की तरह होते हैं। जहाँ जो अन्तर है, वह नीचे दिया जाता है—

२०५ पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १। १। ३४

एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां च सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात्।

पूर्वादि शब्दोंकी व्यवस्था तथा असंज्ञामें गणसूत्रसे प्राप्त 'सर्वनाम संज्ञा' 'जस्' में विकल्पसे होती है—

पूर्वे-पूर्वाः (पहला)। अपरे-अपराः (दूसरा)।
परे-पराः (दूसरा)। अवरे-अवराः (निकृष्ट)।

२०६ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १। १। ३५॥

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा।

ज्ञाति तथा धनवाचीसे अन्य अर्थमें स्वशब्दकी प्राप्त सर्वनाम-संज्ञा जस्में विकल्पसे होती है। स्वे-स्वाः।

२०७ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७। १। १६॥

एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्-स्मिनौ वा स्तः।

पूर्वादि शब्दोंसे परे 'ङसि' और 'ङि' को 'स्मात्', 'स्मिन्' विकल्पसे होते हैं। यथा—

पञ्चमी- पूर्वस्मात्-पूर्वात्। अवरस्मात्-अवरात्। स्वस्मात्-स्वात्। परस्मात्-परात्। अपरस्मात्-अपरात्।

सप्तमी-पूर्वस्मिन्-पूर्वे। परस्मिन्-परे। स्वस्मिन्-स्वे। अपरस्मिन्-अपरे।

प्रयोग—

पूर्वे-महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा। (१०। ६)

अपरे-दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते। (४। २५)

स्वे-स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। (१८। ४५)

स्वस्मिन् कर्मणि—विकल्पसे होगा।

अन्ये-ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। (९। १५)

संख्यावाची शब्द

एक (तीनों लिङ्गोंमें)

	पुँल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	एकः	एकम्	एका
द्वि०	एकम्	एकम्	एकाम्
तृ०	एकेन	शेष पुँल्लिङ्गवत्	एकया
च०	एकस्मै		एकस्यै
पं०	एकस्मात्		एकस्याः
ष०	एकस्य		"
स०	एकस्मिन्		एकस्याम्

'एक' शब्द एकवचनान्त होता है।

प्रयोग—

एकः- यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥ (१३।३३)

एकम्-सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। (१८। ६६)

,, - गिरामस्म्येकमक्षरम्। (१०। २५)

एकेन-द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः। (११। २०)

एकया-एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः। (८। २६)

एकस्मिन्-यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम्। (१८। २२)

'एक' शब्द अन्य कई अर्थोंमें भी प्रयुक्त होता है:—

एकोऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽपि संख्यायां च प्रयुज्यते॥ (कारिका)

अर्थात् एक शब्दका प्रयोग अल्प, प्रधान, प्रथम, केवल साधारण, समान और संख्या—इन अर्थोंमें होता है।

जब संख्याको छोड़कर अन्य अर्थोंमें होता है, तब इसके रूप सब वचनोंमें 'सर्व' की तरह होते हैं। जैसे—

एके-त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः। (१८। ३)

'द्वि' (केवल द्विवचनमें)

	पुँल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	द्वौ	द्वे	द्वे
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	द्वाभ्याम्	पुँल्लिङ्गवत्	पुँल्लिङ्गवत्
च०	,,	,,	,,
पं०	,,	,,	,,
ष०	द्वयोः	,,	,,
स०	,,	,,	,,

प्रयोग—

द्वौ- द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च (१६। ६)

द्वौ- द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। (१५। १६)

निष्पत्तिः-द्वि+औ इस स्थितिमें सू० १७३ से अत्व तथा वृद्धि करके 'द्वौ'। द्वि+ओस्में गुण, फिर 'अय्' करके 'द्वयोः'।

'त्रि' (केवल बहुवचनमें)

	पुँल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	त्रयः	त्रीणि	तिस्रः
द्वि०	त्रीन्	,,	,,
तृ०	त्रिभिः	शेष-	तिसृभिः
च०	त्रिभ्यः	पुँल्लिङ्ग—	तिसृभ्यः
पं०	,,	वत्	,,
ष०	त्रयाणाम्	,,	तिसृणाम्
स०	त्रिषु	,,	तिसृषु

प्रयोग—

त्रीन्-गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ (१४।२०)

त्रिभिः-त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। (७।१३)

त्रिषु-न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन। (३।२२)

निष्पत्तिः-त्रि+(जस्) अस् इस स्थितिमें सू० ३२ से गुण तथा सू० २९ से 'अय् करके 'त्रयः'।

त्रि+आम्-इस स्थितिमें—

२०८ त्रेस्त्रयः ७। १। ५३॥

त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि।

'आम्' परे रहते त्रि शब्दको 'त्रय' आदेश होता है।

त्रय+आम् फिर सू० ९५ से 'न्' (नुट्) करके त्रय+नाम् फिर सू० ९६ से दीर्घ सू० ८८ से 'णत्व' करके 'त्रयाणाम्'।

त्रि+(जस्) अस् इस स्थितिमें—

२०९ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ७। २। ९९॥

स्त्रीलिङ्गयोरेतौ स्तो विभक्तौ।

स्त्रीलिङ्गमें 'त्रि' और 'चतुर्' को 'तिसृ' और 'चतसृ' आदेश होता है।

२१० अचि र ऋतः ७। २। १००॥

तिसृचतसृएतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि।

'अच्' परे रहते 'तिसृ-चतसृ' शब्दके 'ऋ' को 'र्' होता है। इससे 'तिस्रः' रूप सिद्ध हुआ।

तिसृ+आम्-इस स्थितिमें सू० ९५ से 'न्' (नुट्) करके तिसृ+नाम् सू० ८८ से णत्व करके।

२११ न तिसृचतसृ ६। ४। ४॥

एतयोर्नामि दीर्घो न।

नुट् (न्) सहित 'आम्' परे होनेपर 'तिसृ' 'चतसृ' को दीर्घ नहीं होता। अतः तिसृणाम्', चतसृणाम्' ऐसे रूप निष्पन्न हुए।

'चतुर्' (केवल बहुवचनमें)

	पुँल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः
द्वि०	चतुरः	,,	,,
तृ०	चतुर्भिः	शेष पुँल्लिङ्गवत्	चतसृभिः
च०	चतुर्भ्यः	,,	चतसृभ्यः
पं०	,,	,,	,,
ष०	चतुर्णाम्	,,	चतसृणाम्
स०	चतुर्षु	,,	चतसृषु

पञ्चन्, षष्, सप्तन्, नवन्, दशन् (बहुवचनमें) इन शब्दोंके रूप तीनों लिङ्गोंमें समान होते हैं—

प्र०	पञ्च	षट्	सप्त	नव	दश
द्वि०	,,	,,	,,	,,	,,

तृ०	पञ्चभिः	षड्भिः	सप्तभिः	नवभिः	दशभिः
च०	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः
पं०	,,	,,	,,	,,	,,
ष०	पञ्चानाम्	षण्णाम्	सप्तानाम्	नवानाम्	दशानाम्
स०	पञ्चसु	षट्सु	सप्तसु	नवसु	दशसु

अष्टन्

प्र०	अष्ट	अथवा	अष्टौ
द्वि०	,,		,,
तृ०	अष्टभिः		अष्टाभिः
च०	अष्टभ्यः		अष्टाभ्यः
पं०	,,		,,
ष०	अष्टानाम्		अष्टानाम्
स०	अष्टसु		अष्टासु

प्रयोग—

सप्त, चत्वारः-महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा। (१०।६)

पञ्च, दश-इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः। (१३।५)

निष्पत्तिः—चतुर्+(जस्) अस् इस स्थितिमें—

२१२ चतुरनडुहोरामुदात्तः ७। १। ९८॥

अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने स चोदात्तः।

'चतुर्' और 'अनडुह्' को 'आम्' होता है। सर्वनामस्थानमें और वह उदात्त होता है।

'आम्' करके चतु+आर्+अस् फिर 'यण्' करके 'चत्वारः।'

चतुर्+आम् इस स्थितिमें—

२१३ ष्णान्ता षट् १। १। २४॥

षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा स्यात्।

षान्त और नान्त संख्या 'षट्' संज्ञक होती है।

२१४ षट्चतुर्भ्यश्च ७। १। ५५॥

एभ्य आमो नुडागमः स्यात्।

'षट्' संज्ञक और 'चतुर्' शब्दसे परे 'आम्' को 'नुट्' का आगम होता है।

णत्व और वैकल्पिक द्वित्व करके 'चतुर्ण्णाम्' तथा 'चतुर्णाम्' निष्पन्न हुआ।

पञ्चन्+जस् इस स्थितिमें—

२१५ षड्भ्यो लुक् ७। १। २२॥

षड्भ्यः परयोर्जश्शसोर्लुक् स्यात्।

षट्संज्ञक शब्दोंसे परे 'जस्', 'शस्' का 'लुक्' होता है। पञ्च।

२१६ अष्टन आ विभक्तौ ७। २। ८४॥

हलादौ वा स्यात्।

हलादि विभक्ति परे होनेपर 'अष्टन्' को 'आ' विकल्पसे होता है।

२१७ अष्टाभ्य औश् ७। १। २१॥

कृताकारादष्टनो जश्शसोरौश् स्यात्।

आत्व किये हुए 'अष्टन्' शब्दसे 'जस्' और 'शस्' को विकल्पसे 'औश् होता है। अष्ट-अष्टौ वा, **अष्टभिः**-अष्टाभिः।'

क्रमवाचक

पूरणी संख्याको प्रकट करनेवाले संख्यावाची 'क्रमवाचक' कहलाते हैं। यथा—

संख्यावाचक	पुँ०	नपुं०	स्त्री०
एक	प्रथमः	प्रथमम्	प्रथमा
द्वि	द्वितीयः	द्वितीयम्	द्वितीया
त्रि	तृतीयः	तृतीयम्	तृतीया
चतुर्	चतुर्थः	चतुर्थम्	चतुर्थी

पञ्चन्	पञ्चमः	पञ्चमम्	पञ्चमी
षष्	षष्ठः	षष्ठम्	षष्ठी
सप्तन्	सप्तमः	सप्तमम्	सप्तमी
अष्टन्	अष्टमः	अष्टमम्	अष्टमी
नवन्	नवमः	नवमम्	नवमी
दशन्	दशमः	दशमम्	दशमी

स्मरणीय क्रमवाचक शब्दोंके रूप पुँल्लिङ्गमें 'राम' की तरह, नपुंसकलिङ्गमें 'फल' की तरह और स्त्रीलिङ्गमें प्रथम, द्वितीय, तृतीयके 'लता' की तरह और इसके आगे 'नदी' की तरह चलते हैं। यथा—

पञ्चमम्—अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥ (१८। १४)

२१८ द्वेस्तीयः ५। २। ५४॥

पूरणार्थे द्विशब्दात् तीयप्रत्ययो भवति।

डटोऽपवादः। पूरणार्थमें द्वि शब्दसे 'तीय' प्रत्यय होता है।

२१९ त्रेः सम्प्रसारणं च ५। २। ५५॥

त्रिशब्दात् पूरणेऽर्थे तीयप्रत्ययो त्रिशब्दस्य सम्प्रसारणञ्च।

पूरण अर्थमें 'त्रि' से 'तीय' प्रत्यय होता है और 'त्रि' को सम्प्रसारण होता है।

२२० षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ५। २। ५१॥

एषां थुगागमः स्याड्डटि।

षट्–कति–कतिपय–चतुर—इन शब्दोंको 'थुक्' का आगम होता है, यदि 'डट्' प्रत्यय परे हो तो। षष्+थः इस स्थितिमें सू० ४८ से 'थ' को 'ठ' करके 'षष्ठः'।

२२१ नान्तादसंख्यादेर्मट् ५। २। ४९॥

डटो मडागमः।

संख्यादि शब्दको छोड़कर नान्त संख्यावाची शब्दसे 'डट्'

को 'मट्' का आगम होता है। 'पञ्चमः'।

संख्यावाचक	पुँ०	नपुं०	स्त्री०
११ एकादशन्	एकादशः	एकादशम्	एकादशी
१२ द्वादशन्	द्वादशः	द्वादशम्	द्वादशी
१३ त्रयोदशन्	त्रयोदशः	त्रयोदशम्	त्रयोदशी
१४ चतुर्दशन्	चतुर्दशः	चतुर्दशम्	चतुर्दशी
१५ पञ्चदशन्	पञ्चदशः	पञ्चदशम्	पञ्चदशी
१६ षोडशन्	षोडशः	षोडशम्	षोडशी
१७ सप्तदशन्	सप्तदशः	सप्तदशम्	सप्तदशी
१८ अष्टादशन्	अष्टादशः	अष्टादशम्	अष्टादशी
१९ नवदशन्	नवदशः	नवदशम्	नवदशी
१९ एकोनविंशतिः	एकोनविंशः	एकोनविंशम्	एकोनविंशी
२० विंशतिः	विंशः	विंशम्	विंशी
२० ,,	विंशतितमः	विंशतितमम्	विंशतितमी

निष्पत्तिः—एकादशन्से नवदशन् तकके शब्दोंकी निष्पत्ति 'पञ्चन्' की तरह होती है। पूरण अर्थमें 'डट्' प्रत्यय करके एकादश इत्यादि रूप बनते हैं।

'विंशति' से पूरण अर्थमें—

२२२ तस्य पूरणे डट् ५। २। ४८॥

षष्ठ्यन्तात् संख्यावाचकात् पूरणेऽर्थे डट् स्यात्।

पूरण अर्थमें षष्ठ्यन्त संख्यावाचकसे 'डट्' प्रत्यय होता है।

२२३ ति विंशतेर्डिति ६। ४। १४२॥

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे।

'डित्' परे होनेपर 'विंशति' के 'ति' का लोप होता है।

२२४ विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ५। २। ५६॥

विंशत्यादिभ्यस्तमड् वा पूरणे।

पूरण अर्थमें 'विंशति' आदिसे 'तमट्' प्रत्यय विकल्पसे होता है। इससे विंश: अथवा विंशतितम: दो रूप निष्पन्न हुए।

संख्यावाचक	क्रमवाचक	क्रमवाचक
२१ एकविंशति	एकविंश	अथवा एकविंशतितम
२२ द्वाविंशति	द्वाविंश	अथवा द्वाविंशतितम
२३ त्रयोविंशति	त्रयोविंश	,, त्रयोविंशतितम
२४ चतुर्विंशति	चतुर्विंश	,, चतुर्विंशतितम
२५ पञ्चविंशति	पञ्चविंश	,, पञ्चविंशतितम
२६ षड्विंशति	षड्विंश	,, षड्विंशतितम
२७ सप्तविंशति	सप्तविंश	,, सप्तविंशतितम
२८ अष्टाविंशति	अष्टाविंश	,, अष्टाविंशतितम
२९ नवविंशति	नवविंश	,, नवविंशतितम
२९ एकोनत्रिंशत्	एकोनत्रिंश	,, एकोनत्रिंशत्तम
३० त्रिंशत्	त्रिंश	,, त्रिंशत्तम

स्मरणीय इस क्रमवाचक शब्दोंके रूप राम, फल, नदी (एकविंश:, एकविंशम्, एकविंशी) की तरह चलते हैं और आगे यही क्रम चालू रहेगा।

इसी प्रकार 'सौ' से अधिक संख्या बनानेकी रीति

३१ एकत्रिंशत्
३२ द्वात्रिंशत्
३३ त्रयस्त्रिंशत्
३४ चतुस्त्रिंशत्
३५ पञ्चत्रिंशत्
३६ षट्त्रिंशत्
३७ सप्तत्रिंशत्

५० पञ्चाशत्
६० षष्टि:
७० सप्तति:
८० अशीति:
९० नवति:
१०० शतम्
१००० सहस्रम्

३८ अष्टात्रिंशत् १०००० दशसहस्रम्
{३९ नवत्रिंशत् अथवा १००००० लक्षम्
{३९ एकोनचत्वारिंशत् १०००००००कोटिः
४० चत्वारिंशत्

छोटी संख्याको पहले रखो और बड़ीको अन्तमें। मध्यमें 'उत्तर' या 'अधिक' लगाओ। जैसे—

१०१ एकोत्तरशतम् या एकाधिकशतम्।

१११ एकादशोत्तरशतम् अथवा १११ एकादशाधिकशतम्।

५५५ पञ्चपञ्चाशदुत्तरपञ्चशतम्।

५००१ एकोत्तरपञ्चसहस्रम्।

'अङ्कानां वामतो गतिः' अर्थात् छोटे अङ्क पहले होने चाहिये।

परिमाणवाचक शब्द

'यद्' से 'यावत्' और 'तद्' से 'तावत्'। इन शब्दोंके रूप पुँल्लिङ्गमें 'भवत्' की तरह, नपुंसकलिङ्गमें 'जगत्' की तरह और स्त्रीलिङ्गमें 'नदी' की तरह होते हैं। इसी प्रकार 'एतावत्' 'कियत्' 'इयत्' है। यथा—

यावान्-यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्-तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥ (२।४६)

निष्पत्तिः-यद्, तद्, एतद्—इन शब्दोंसे—

२२५ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५। २। ३९॥

प्रथमान्तेभ्यो यत्तदेतेभ्योऽस्य परिमाणमित्यर्थे वतुप् स्यात्।

यद् तद्, एतद्—इनसे परिमाण अर्थमें 'वतुप्' प्रत्यय होता है।

२२६ आ सर्वनाम्नः ६। ३। ९१॥

सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्याद् दृग्दृशवतुषु।

सर्वनामको आकार अन्तादेश होता है, दृग्-दृश्-वतुप् परे होनेपर।

इससे 'यद्' को 'या' 'तद्' को 'ता' और 'एतद्' को 'एता' आदेश करके 'यावत्' 'तावत्' 'एतावत्' रूप निष्पन्न होते हैं।

'किम्' और 'इदम्' शब्दसे।

२२७ किमिदंभ्यां वो घः ५। २। ४०॥

आभ्यां वतुप् स्याद् वकारस्य घश्च।

'किम्' और 'इदम्' से 'वतुप्' और 'व' को 'घ' होता है। इस सूत्रसे 'किम्' और 'इदम्' को 'वतुप्' प्रत्यय और 'व' को 'घ' करनेपर—

२२८ इदंकिमोरीश्की ६। ३। ९०॥

दृग्दृश्वतुषु इदम् ईश् किमः किः स्यात्।

दृग्-दृश्-वत् परे होनेपर 'इदम्' को 'ईश्' और 'किम्' को 'की' आदेश होता है। 'कियत्', 'इयत्', 'कीदृक्', 'ईदृक्' ये रूप बनते हैं।

सार्वनामिक शब्द

जब सर्वनाम संज्ञाके साथ विशेषण बनकर आते हैं, तब 'सार्वनामिक' कहलाते हैं। यथा—

अयम्- देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्यभारत। (२। ३०)

एषा- एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति। (२। ७२)

अमी- अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति। (११। २१)

अस्मिन्-परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः। (१३। २२)

सर्वेषु- अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः। (१। ११)

अन्य सार्वनामिक उदाहरण

मामकाः-मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय। (१। १)

मामिकाम्-सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्। (९।७)
ईदृक्-मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्। (११। ४९)
ईदृशम्-सुखिनः क्षत्रिया: पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। (२। ३२)
अस्मदीयः-सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः। (११। २६)

२२९ तवकममकावेकवचने ४। ३। ३॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोः तवकममकौ स्तः खञि अणि च।

'खञ्' और 'अण्' परे होनेपर एकार्थवाची 'युष्मद्' 'अस्मद्' को 'तवक' 'ममक' आदेश होते हैं।

२३० त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ३। २। ६०॥

त्यदादिषूपपदेष्वज्ञानार्थदृशेर्धातोः कञ् स्याच्चात् क्विन्।

'त्यद्' 'तद्' आदि शब्दोंसे परे 'दृश्' धातुको यदि उसका अर्थ देखना न हो तो उससे 'कञ्' प्रत्यय लगता है और 'क्विन्'। इदम्+दृश्से 'कञ्' प्रत्यय करके 'ईदृश्'।

२३१ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ४। ३। १॥

चाच्छः। पक्षेऽण्।

'युष्मद्' 'अस्मद्' से 'खञ्' और 'छ' प्रत्यय होते हैं और पक्षमें 'अण्' भी होता है।

'अस्मद्' शब्दसे 'अण्' प्रत्यय करनेपर 'ममक' आदेश और वृद्धि करके मामकः।

इसी प्रकार 'तावकः' बनता है।

अथ कारकप्रकरणम्

प्रथमा विभक्ति

२३२ प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २। ३। ४६॥

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्।

जिस प्रातिपदिकके बोलनेपर जिस अर्थकी नियमसे उपस्थिति हो, वह प्रातिपादिकार्थ विवक्षित है। 'मात्र' शब्दका प्रत्येकके साथ योग है।

प्रातिपदिकार्थमात्रमें लिङ्गमात्रके आधिक्यमें, परिमाणमात्रमें तथा संख्यामात्रमें 'प्रथमा' विभक्ति आती है। यथा प्रातिपदिकार्थमात्रमें—

उच्चैः-सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्। (१। १२)

कृष्णः-धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्। (८। २५)

श्रीः-कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणाम्। (१०। ३४)

ज्ञानम्-बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः। (१०। ४)

२३३ सम्बोधने च २। ३। ४७

प्रथमा स्यात्।

सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—

अच्युत-सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत। (१। २१)

२३४ स्वतन्त्रः कर्त्ता १। ४। ५४॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

सूचना-कर्तृवाच्यके 'कर्ता' में 'प्रथमा' विभक्ति आती है।

मधुसूदनः-विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः। (२। १)

यहाँ 'मधुसूदनः' कर्तृवाच्यका कर्ता है।

सूचना-'कर्म' वाच्यके कर्ममें प्रथमा विभक्ति लगती है। यथा—

योगः-स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। (४। ३)

यहाँ 'योगः' कर्मवाच्यका कर्म है।

द्वितीया विभक्ति

२३५ कर्तुरीप्सिततमं कर्म १। ४। ४९॥

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

कर्ताको क्रियाके द्वारा प्राप्त करनेके लिये जो इष्टतम कारक हो, उसे 'कर्म' कारक कहते हैं।

२३६ कर्मणि द्वितीया २। ३। २॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्।

अनुक्त कर्ममें 'द्वितीया' विभक्ति होती है। यथा—

एतान्-यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्। (१। २२)

२३७ अकथितं च १। ४। ५१॥

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं 'कर्म' संज्ञं स्यात्।

अपादानादि कारकोंसे अविवक्षित कारक 'कर्म' संज्ञक होता है।

कुछ धातुएँ 'द्विकर्मक' होती हैं। उनकी गिनती निम्नलिखित कारिकामें की गयी है—

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥ (कारिका)

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। दुहादि सोलह धातुओंका अर्थ लिया जाता है। अतः इनकी पर्यायवाची धातुएँ भी 'द्विकर्मक' होती है। यथा—

पृच्छामि- पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः,
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे। (२। ७)

भाषसे- अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। (२। ११)

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥ (कारिका)

उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः, अध्यधि, ऋतेके योगमें 'द्वितीया' विभक्ति आती है।

ऋते-ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥ (११। ३२)

२३८ गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि २। ३। १२॥

अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्मण्येतेस्तश्चेष्टायाम्।

जब गत्यर्थक धातुओंका कर्म मार्ग न हो और क्रिया करनेमें शारीरिक व्यापार करना पड़े तो ऐसे कर्ममें द्वितीया अथवा चतुर्थीका प्रयोग होता है। यथा—

पदम्-जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्। (२। ५१)
एति-(इण् गतौ) निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव। (११। ५५)

तृतीया विभक्ति

२३९ साधकतमं करणम् १। ४। ४२॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं कारकं करणसंज्ञं स्यात्।

क्रियाकी सिद्धिमें जो अत्यन्त उपकारक हो, उसे 'करण' कहते हैं। यथा—

लोभेन-अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥ (१। ४५)

२४० कर्तृकरणयोस्तृतीया २। ३। १८॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्।

अनुक्त 'कर्ता' और 'करण' में 'तृतीया' विभक्ति आती है। यथा—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। (५। १९)

प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (वार्तिक)

प्रकृति आदि शब्दोंमें 'तृतीया' विभक्ति आती है। यथा—

प्रकृत्या-तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया। (७। २०)

२४१ सहयुक्तेऽप्रधाने २। ३। १९॥

सहार्थेन युक्तेऽप्रधाने तृतीया स्यात्।

'सह' के योगमें अप्रधानमें 'तृतीया' विभक्ति आती है। यथा—

मया-कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे। (१। २२)

२४२ पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् २। ३। ३२॥

एभिर्योगे तृतीया स्यात् पञ्चमीद्वितीये च।

पृथक्, विना, नानाके साथ 'तृतीया' विभक्ति आती है और द्वितीया अथवा पञ्चमी भी।

विना-न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्। (१०। ३९)

२४३ तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् २। ३। ७२॥

तुल्यार्थैर्योगे तृतीया वा स्यात् पक्षे षष्ठी।

'तुला' और 'उपमा' का अर्थ प्रकट करनेवाले शब्दोंके साथ 'तृतीया' अथवा 'षष्ठी' विभक्ति आती है। यथा—

मया सदृशः-आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया। (१६। १५)

२४४ हेतौ २। ३। २३॥

हेत्वर्थे तृतीया स्यात्।

जिस हेतुसे कोई कार्य हो या किया जाय, उसमें 'तृतीया' विभक्ति आती है।

हितकाम्यया-यत्तेऽहंप्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया। (१०। १)

चतुर्थी विभक्ति

२४५ कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १। ४। ३२॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्।

'दा' धातुके कर्मसे कर्ता जिससे सम्बन्ध करनेकी इच्छा करता हो, उसे सम्प्रदान कहते हैं।

२४६ चतुर्थी सम्प्रदाने २। ३। १३॥

सम्प्रदानेऽर्थे चतुर्थी स्यात्

सम्प्रदानमें 'चतुर्थी' 'विभक्ति' आती है।

अनुपकारिणे-दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। (१७। २०)

२४७ तुमर्थाच्च भाववचनात् २। ३। १५॥

भाववचनाश्च इति सूत्रेण यो विहितस्तदन्ताच्चतुर्थी स्यात्।

'तुमुन्' का अर्थ प्रकट करनेके लिये बनी हुई 'भाववाचक' संज्ञासे 'चतुर्थी' विभक्तिका प्रयोग होता है। यथा—

परित्राणाय	विनाशाय	संस्थापनार्थाय
परित्रातुम्	विनाशयितुम्	संस्थापयितुम्

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (४। ८)

तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्तिक)

जिस प्रयोजनके लिये कोई कार्य किया जाय, उसमें 'चतुर्थी' विभक्ति होती है। यथा—

अमृतत्वाय— यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ (२। १५)

२४८ नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च २। ३। १६

एभिर्योगे चतुर्थी स्यात्।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं और वषट्के योगमें चतुर्थी विभक्ति आती है। यथा—

नमः ते—नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद। (११। ३१)

नमस्ते-पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते। (११। ३९)

उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी (परिभाषा)

उपपद विभक्तिसे कारक विभक्ति (क्रियाके योगसे होनेवाली) बलवती होती है। यथा—

मां नमस्कुरु-मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। (९। ३४)

पञ्चमी विभक्ति

२४९ ध्रुवमपायेऽपादानम् १। ४। २४॥

अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये यद् ध्रुवमवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात्।

अपायका अर्थ है विश्लेष (विच्छेद) उसकी सिद्धिमें ध्रुव अवधिभूत कारकको 'अपादान' कहते हैं।

२५० अपादाने पञ्चमी २। ३। २८॥

अपादाने पञ्चमी स्यात्।

अपादानमें 'पञ्चमी' विभक्तिका प्रयोग होता है। यथा—

रणात्-भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः। (२। ३५)

२५१ भीत्रार्थानां भयहेतुः १। ४। २५॥

भयार्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे हेतुरपादानं स्यात्।

जिससे भय हो, अथवा जिसके भयके कारण रक्षा करनी हो, वह 'अपादान' होता है। यथा—

भयात्—स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (२। ४०)

२५२ जनिकर्तुः प्रकृतिः १। ४। ३०॥

जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात्।

'जन्' धातुके कर्ताका जो आदि कारण हो, वह 'अपादान' होता है। यथा—

सङ्गात्—सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते। (२। ६२)

२५३ भुवः प्रभवः १। ४। ३१॥

भवनं भूः, भूकर्तुः प्रभवस्तथा।

उत्पन्न होनेवालेका प्रभव (उत्पत्ति-स्थान) 'अपादान' होता है। यथा—

अव्यक्ताद्—अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाःप्रभवन्त्यहरागमे। (८। १८)

२५४ पञ्चमी विभक्ते २। ३। ४२॥

विभागो विभक्तं, निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी स्यात्।

जिसके द्वारा तुलनात्मक भेद दिखाया जाय, वहाँ 'पञ्चमी' विभक्ति आती है।

परधर्मात्-श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। (३। ३५)

२५५ अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते २। ३। २९

एतैर्योगे पञ्चमी स्यात्।

अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिग्वाची शब्द तथा दक्षिणादि शब्दोंसे 'पञ्चमी' विभक्ति आती है। यथा—

तस्माद् अन्यः-भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि। (१८। ६९)

२५६ विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् २। ३। २५॥

गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पञ्चमी वा स्यात्।

हेतुको प्रकट करनेवाले स्त्रीलिङ्गभिन्न गुणवाची शब्दसे 'तृतीया' अथवा 'पञ्चमी' होती है। यथा—

भयात्-भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः। (२। ३५)

षष्ठी विभक्ति

२५७ षष्ठी शेषे २। ३। ५०॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात्।

कारक तथा प्रातिपदिकार्थसे भिन्न जन्यजनकभावादि सम्बन्ध शेष है, उसमें 'षष्ठी' विभक्ति आती है। यथा—

हरेःरूपम्- तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः॥ (१८।७७)

२५८ षष्ठी हेतुप्रयोगे २। ३। २६॥

हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी स्यात्।

'हेतु' शब्दके प्रयोगमें तथा 'कारण' दोनोंमें 'षष्ठी' विभक्तिका प्रयोग होता है। यथा—

राज्यस्य हेतोः- एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते॥ (१।३५)

२५९ क्तस्य च वर्तमाने २। ३। ६७॥

वर्तमानार्थस्य क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्।

'क्त' प्रत्ययान्त शब्द वर्तमानके अर्थमें आये तो 'षष्ठी' विभक्तिका प्रयोग होता है। यथा—

भूतानाम्-अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्। (१२। १३)

२६० कृत्यानां कर्तरि वा २। ३। ७१॥

षष्ठी वा स्यात्।

'कृत्य' प्रत्ययान्त शब्दोंके साथ कर्तामें तृतीया अथवा 'षष्ठी' विभक्ति आती है। यथा—

अस्य पूज्यः-त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।

लोकस्य-पितासि लोकस्य चराचरस्य। (११। ४३)

सप्तमी विभक्ति

२६१ आधारोऽधिकरणम् १। ४। ४५॥

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात्।

कर्ता ओर कर्मके द्वारा सम्बन्ध रखनेवाली क्रियाका आधार 'अधिकरण' होता है।

२६२ सप्तम्यधिकरणे च २। ३। ३६॥

अधिकरणे सप्तमी स्यात्। चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः। औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा।

अधिकरणमें सप्तमी विभक्ति आती है। दूर तथा अन्तिक

अर्थमें भी। आधार तीन प्रकारका होता है—१ औपश्लेषिक, २ वैषयिक, ३ अभिव्यापक। यथा—

स्वधर्मे-स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। (३। ३५)

यहाँ 'वैषयिक' आधार है।

कुरुक्षेत्र-धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। (१। १)

यहाँ 'औपश्लेषिक' आधार है।

शरीरे-वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते। (१। २९)

यहाँ 'अभिव्यापक' आधार है।

२६३ यतश्च निर्धारणम् २। ३। ४१॥

जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं यतस्ततः षष्ठीसप्तम्यौ स्तः।

यदि किसी वस्तुका अपने समूहकी वस्तुओंसे विशेष निर्धारण किया जाय तो उस समूहवाचक शब्दमें 'षष्ठी' अथवा 'सप्तमी' विभक्ति आती है। यथा—

वेद, देव-वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः। (१०। २२)

यहाँ—वेदानां वेदेषु वा। देवानां देवेषु वा।

इति कारकप्रकरणम्

अथाव्ययप्रकरणम्

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

जो शब्द तीनों लिङ्गों, सब विभक्तियों और सब वचनोंमें न बदले, उसे 'अव्यय' कहते हैं।

२६४ स्वरादिनिपातमव्ययम् १। १। ३७॥

स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः स्युः।

स्वरादिगण पठित तथा निपातसंज्ञक शब्दोंकी 'अव्यय' संज्ञा होती है।

स्वरादिगण पठित अव्यय

उच्चैः-सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्। (१। १२)
ऋते-ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे। (११। ३२)
अधः-अधो गच्छन्ति तामसाः। (१४। १८)
अथ-तत्रापश्यत् स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान्। (१। २६)
ऊर्ध्वम्-ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्थाः। (१४। १८)
एव-संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च। (१। ४२)
एवम्-एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे। (४। ३२)
कच्चित्-कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय। (१८। ७२)
च-न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयः। (२। ६)

कुछ अन्य अव्यय

अतीव-श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः। (१२। २०)
अथवा-अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्। (६। ४२)
आहो-तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः। (१७। १)
ओम्-ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। (८। १३)
क्षिप्रम्-क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा। (४। १२)
जातु-न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। (३। ५)
तूष्णीम्-न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह। (२। ९)
अहो-अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्। (१। ४५)
हन्त-हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः। (१०। १९)

२६५ उपसर्गाः क्रियायोगे १। ४। ५१॥

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः।

'प्र' आदि क्रियाके योगमें 'उपसर्ग' संज्ञक होते हैं।

प्रादयः

प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप—एते प्रादयः।

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥

'उपसर्ग' वे शब्दांश हैं जो धातु या धातुसे निष्पन्न संज्ञा आदि शब्दोंसे जुड़कर उनके अर्थको बदल देते हैं। इन्हें 'अव्यय' भी कहते हैं।

उपसर्ग

प्र-(प्रकर्ष) कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय। (१८। ७२)
,,- ,, स्वभावस्तु प्रवर्तते। (५। १४)
,,-(उत्पत्ति) अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाःप्रभवन्त्यहरागमे। (८। १८)
अप-(दूर, बुरा) माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः। (७। १५)
अति-(बाहुल्य) सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। (२। ३४)
सम्- (अच्छी तरह उत्पन्न होना) धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। (४। ८)
निस्-(नहीं, पूर्ण) संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ। (५। २)
निर्-(नहीं) निर्ममोनिरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति। (२। ७१)
वि-(बिना) श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। (३। ३५)
दुस्-(कठिन) असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः। (६। ३६)
दुर्-(बुरा) न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति। (६। ४०)
आङ्-(सम्यक्) यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। (३। २१)
नि-(विरुद्ध) प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति। (३। ३३)
सु-(अच्छी तरह) तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः। (८। १४)
उद्-(ऊपर उठना) उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानम्। (६। ५)
अभि-(ओर) मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव। (१६। ५)
प्रति-(ओर) मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे। (१८। ६५)
परि-(चारों ओर) मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः। (१८। ७)
उप-(निकट) ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। (२। ६२)
अनु-(पीछे) स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते। (३। २१)

तद्धित प्रत्ययोंसे बने हुए अव्यय

२६६ तद्धितश्चासर्वविभक्तिः १। १। ३८॥

यस्मात्सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यात्।

जिससे सब विभक्तियोंकी उत्पत्ति न हो, वह तद्धितान्त शब्द 'अव्यय' संज्ञक होता है। 'पञ्चम्यास्तसिल्' से लेकर 'याप्ये पाशप्' सूत्रतक जितने तद्धित प्रत्यय हैं, उनसे बने शब्द 'अव्यय' होते हैं।

१. 'तसिल्'-प्रत्यय पञ्चमीके अर्थमें लगता है।

'किम्' को 'कु' करके उससे 'तसिल्' प्रत्यय लगाकर 'कुतः'।

कुतः-कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्। (२। २)

२. इदम् को 'इ' तथा उससे 'तसिल्' प्रत्यय करके 'इतः'।

इतः-अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। (७। ५)

३. सर्वसे 'तसिल्' प्रत्यय करके 'सर्वतः'।

सर्वतः-पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्। (११। १६)

'यद्' से 'तसिल्' प्रत्यय करके 'यतः'।

यतः-यतः प्रवृत्तिर्भूतानाम्। (१८। ४६)

'त्रल्' प्रत्यय सप्तमीके अर्थमें आता है।

'यद्' से 'त्रल्' प्रत्यय करके 'यत्र' बनता है।

यत्र-यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति। (६। २०)

इदम्को अत्त्व तथा उसके आगे 'त्रल्' प्रत्यय करके 'अत्र'।

अत्र-किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। (४। १६)

इदम् से 'ह' प्रत्यय करके 'इह'।

इह-ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि। (१६। २४)

यद्से 'दा' और 'तद्' से 'दा' सप्तमीके अर्थमें करके 'यदा' 'तदा'।

यदा-यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।

तदा-तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥ (२। ५२)

'यद्' और 'तद्' से 'थाल्' प्रत्यय करके 'यथा' 'तथा'।

यथा-यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
तथा-क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत। (१३। ३३)
'अनेक'-से 'धा' प्रत्यय करके 'अनेकधा'।
अनेकधा-तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा। (११। १३)
'अष्ट'से 'धा' प्रत्यय करके 'अष्टधा'।
अष्टधा-भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। (७। ४)
'शत' और 'सहस्र' से 'शः' प्रत्यय करके 'शतशः' 'सहस्रशः'।
'शतशःसहस्रशः'-पश्य मे पार्थरूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः। (११। ५)
आश्चर्यसे 'वत्' प्रत्यय करके 'आश्चर्यवत्'।
आश्चर्यवत्-आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्। (२। २९)
आदित्यसे 'वत्' प्रत्यय करके 'आदित्यवत्'।
आदित्यवत्-तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्। (५। १६)
'किम्' से थम् (थमु) प्रत्यय करके 'कथम्'।
कथम्-कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्। (१०। १७)
'विस्तार' से 'शः' प्रत्यय करके 'विस्तरशः'।
विस्तरशः-भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया॥ (११। २)
सहस्र से 'कृत्वः' प्रत्यय करके 'सहस्रकृत्वः'।
सहस्रकृत्वः-नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः। (११। ३९)

कृत्यप्रत्ययोंसे बने हुए अव्यय

२६७ कृन्मेजन्तः १। १। ३९॥

कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात्।

'मान्त' और 'एजन्त' कृत्प्रत्ययान्त शब्द 'अव्यय' संज्ञक होते हैं।

'णमुल्' प्रत्ययका 'अम्' कृत् है।

अजस्रम्- तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥ (१६। १९)

२६८ क्त्वातोसुन्कसुनः १। १। ४०॥

एतदन्तमव्ययं स्यात्।

क्त्वा, तोसुन्, कसुन् प्रत्ययान्त शब्द 'अव्यय' संज्ञक होते हैं।

इष्से (त्वा) 'क्त्वा' प्रत्यय करके 'इष्ट्वा।'

इष्ट्वा-यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते। (९। २०)

'वच्' से 'क्त्वा' प्रत्यय करके 'उक्त्वा'।

उक्त्वा-एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्। (१। ४७)

'जि' से 'त्वा' प्रत्यय करके 'जित्वा'।

जित्वा-तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रुन् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्। (११। ३३)

प्र+नम्+(ल्यप्) य='प्रणम्य'।

प्रणम्य-प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत। (११। १४)

उप+विश+(ल्यप्) य='उपविश्य'।

उपविश्य-उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये। (६। १२)

हन्+(तुमुन्) तुम्='हन्तुम्'।

हन्तुम्-'एतान्न' हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन। (१। ३५)

कृ+(तुमुन्) तुम्='कर्तुम्'।

कर्तुम्-ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ (१६। २४)

२६९ अव्ययीभावश्च १। १। ४१॥

अयं नपुंसकं स्यात्।

अव्ययीभाव समास 'अव्यय' संज्ञक होता है। यथा—

अधिभूतम्- }
अधिदैवतम्- } अधिभूतं क्षरो भावःपुरुषश्चाधिदैवतम्। (८।४)

उत्पत्ति-विनाशवाले सब पदार्थ 'अधिभूत' होते हैं।

समक्षम्-एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥ (११। ४२)

इत्यव्ययप्रकरणम्

अथ स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्

संस्कृतमें कुछ ऐसी संज्ञाएँ हैं, जिनका लिङ्ग नित्य होता है। उन्हें 'नित्यलिङ्गी' कहते हैं।

पुँल्लिङ्ग रामः-रामः शस्त्रभृतामहम्। (१०। ३१)

नपुंसकलिङ्ग फलम्-पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। (९। २६)

स्त्रीलिङ्ग निशा-या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। (२। ६९)

इनमें राम, फल, निशा—ये अपने निश्चित लिङ्गमें रहते हैं, अतः इनका लिङ्ग नहीं बदलता, परन्तु कुछ ऐसी संज्ञाएँ भी हैं जिनके आगे 'प्रत्यय' लगानेपर उनका लिङ्ग बदल जाता है।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥ (१७। २)

यहाँ 'सत्त्व' से 'सात्त्विकी', 'रजस्' से 'राजसी' और 'तमस्' से 'तामसी'—ये तीनों रूप (ङीप्) प्रत्यय लगाकर बने हैं।

संस्कृतमें मुख्य स्त्रीप्रत्यय सात हैं—

१ टाप्, २ डाप्, ३ चाप्, ४ ङीप्, ५ ङीन्, ६ ङीष्, और ७ ऊङ्। टाप्, डाप् और चाप्से आदि और अन्तका लोप करके 'आ' बचता है और इसी प्रकार ङीप्, ङीन्, ङीष्मेंसे आदि और अन्तका लोप करके केवल 'ई' बचता है। 'ऊङ्' मेंसे 'ङ्' का लोप करके 'ऊ' बचता है। इसके अतिरिक्त 'ति' प्रत्यय भी होता है जिससे 'युवति' शब्द निष्पन्न होता है।

टाप् 'आ'

२७० अजाद्यतष्टाप् ४। १। ४॥

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये 'टाप् स्यात्।' अजादिगणपठित तथा अकारान्त शब्दोंसे 'टाप्' प्रत्यय होता है, यदि स्त्रीत्वका बोध कराना हो तो।

अजादिगणमें पठित शब्दोंके उदाहरण गीतामें उपलब्ध नहीं होते। केवल गण-ज्ञानके लिये नीचे कुछ शब्द लिखे जाते हैं।

अज-अजा	अश्व-अश्वा	एडक-एडका
चटक-चटका	बाल-बाला	मूषक-मूषिका
मन्द-मन्दा	वत्स-वत्सा	विलात-विलाता

अकारान्त शब्दोंसे 'टाप्' प्रत्यय

सर्वाः-व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः। (११। २०)

मामिकाम्-सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्। (९। ७) **(मामकनरकयोरुपसंख्यानम्)** वार्तिकसे 'माम' के 'अ' को 'इ' तथा उससे 'टाप्' प्रत्यय करके 'मामिकाम्'।

ङीप् 'ई'

('ङीप्') 'ई' प्रत्यय लगाकर बनाये हुए शब्द—

दैवी-दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। (१६। ५)

मानुषीम्-अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। (९। ११)

गुणमयी-दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। (७। १४)

जाह्नवी-स्रोतसामस्मि जाह्नवी। (१०। ३१)

राक्षसीम्-राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः। (९। १२)

पुराणी-तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी। (१५। ४)

(ङीन्) 'ई'

२७१ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४। १। ७३॥

शार्ङ्गवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो 'ङीन्' स्यात्।

शार्ङ्गरवादिगणपठित तथा 'अञ्' प्रत्ययके अकारान्त शब्दसे 'ङीन्' प्रत्यय होता है। यथा—

नारीणाम्-कीर्तिःश्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा। (१०। ३४)

(वार्तिक) नृनरयोर्वृद्धिश्च-नृ, नर शब्दसे ङीन् प्रत्यय और प्रकृतिको वृद्धि भी होती है। वार्तिकसे 'वृद्धि' होकर 'नारी'। 'ङीष्' के उदाहरण गीतामें उपलब्ध नहीं होते।

इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्

अथ समासप्रकरणम्

'समसनं समासः' अर्थात् समस्त करनेको 'समास' कहते हैं। परस्पर सम्बन्ध रखनेवाले दो या दोसे अधिक शब्दोंमें 'समास' होता है। यथा—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। (१। १)

धर्मस्य क्षेत्रे। कुरूणां क्षेत्रे।

१. समास करते समय पदोंकी विभक्तियोंका लोप होता है।
२. समासमें सन्धि-नियमोंका प्रयोग होता है।
३. जिन शब्दोंमें समास होता है, उन्हें 'समस्त' कहते हैं।
४. समस्त शब्दोंसे सुबन्त प्रत्यय लगते हैं और समस्त शब्द 'पद' बनता है।
५. सभी पदोंको अलग-अलग करना 'विग्रह' कहलाता है। इनको 'खण्ड' कहते हैं।

समासोंके भेद

किसी समासका पहला खण्ड प्रधान होता है, किसीका दूसरा, किसी समासके सभी खण्ड प्रधान होते हैं और किसीका कोई भी खण्ड प्रधान नहीं होता। इन्हीं खण्डोंकी प्रधानता या अप्रधानताके कारण समासके चार भेद होते हैं—

१. **अव्ययीभाव**-जिसमें पूर्वपद प्रधान है।
२. **तत्पुरुष**-जिसमें उत्तरपद प्रधान है।
३. **बहुव्रीहि**-जिसमें अन्य पद प्रधान हो।
४. **द्वन्द्व**-जिसमें उभयपद प्रधान हो।

समास 'नित्य' तथा 'अनित्य' दो तरहके होते हैं। जिनको विकल्पसे करते हैं वह 'अनित्य' हैं। इनका विग्रह भी प्रयोगमें आ सकता है; परन्तु नित्य समासोंमें अपने पदोंसे विग्रह भी नहीं होता। किन्तु संस्कृतमें समासके कुल पाँच भेद होते हैं जिनमें प्रथम समास 'केवल' समास कहलाता है।

१ अव्ययीभाव

'अव्ययीभाव' में पहला पद प्रधान होता है। वह प्रायः 'अव्यय' या 'उपसर्ग' होता है और समस्त पद 'अव्यय' बन जाता है। यथा–**अध्यात्मम्** (आत्मनि इति)

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम। (८। १)

२७२ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्यया-सम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु २। १। ६॥

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः।

विभक्त्यादि अर्थोंमें अव्ययके साथ नित्य समास होता है, यह 'अव्ययीभाव' कहलाता है।

इस सूत्रसे 'अध्यात्मम्' में 'आत्मनि' इतिमें इति शब्द सप्तमी विभक्तिका अर्थ बोध करानेके लिये समास हुआ है।

२७३ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १। २। ४३॥

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

समासशास्त्रमें प्रथमानिर्दिष्टकी 'उपसर्जन' संज्ञा होती है।

२७४ उपसर्जनं पूर्वम् २। २।

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम्।

समासमें उपसर्जन सञ्ज्ञकका पूर्व प्रयोग होता है।

इन सूत्रोंसे उपसर्जन होनेके कारण 'अधि' का प्रयोग पहले हुआ है।

अधिदैवम्–अधिदैवं किमुच्यते। (८। १)

२७५ अव्ययीभावश्च २। ४। १८॥

अयं नपुंसकं स्यात्।

'अव्ययीभाव' समास नपुंसकमें आता है।

इस सूत्रसे 'अधिदैवम्' नपुंसकमें आया है।

यथाभागम्-अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि॥ (१।११)

२७६ नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः २। ४। ८३॥

अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक् तस्य तु पञ्चमीं विना अमादेशश्च स्यात्।

अदन्त अव्ययीभावसे 'सुप्' का लोप नहीं होता, अपितु पञ्चमी विभक्तिसे अतिरिक्त स्थलमें 'अम्' आदेश होता है।

इस सूत्रसे 'भागान् अनतिक्रम्य' यथाभागम्में 'अम्' आदेश होकर 'भागम्' बना है।

अध्यात्मम्-ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्। (७।२९)

२७७ अनश्च ५। ४। १०८॥

अन्नन्तादव्ययीभावात् 'टच्' स्यात्।

अन्-अन्त अव्ययीभावसे 'टच्' प्रत्यय होता है।

२७८ नस्तद्धिते ६। ४। १४४॥

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते।

अव्ययीभाव समासमें तद्धित परे रहते 'न्' अन्त भसंज्ञककी 'टि' का लोप होता है।

इस सूत्रसे 'आत्मन्' शब्दसे 'अन्' का लोप होकर अध्यात्मम् सिद्ध हुआ है।

२७९ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १। २। ४७॥

अजन्तस्येत्येव।

नपुंसक लिङ्गमें अजन्त प्रातिपदिकको ह्रस्व होता है।

अधिदैवतम्-अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्। (८। ४)

'देवतायाम् इति' अधिदैवतम्में अधिदेवता शब्दके अन्तिम आ को ह्रस्व करके व 'सु' को 'अम्' करके अधिदैवतम् बना।

२८०. द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २।१।२४॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते स च तत्पुरुषः।

द्वितीयान्तका श्रितादिप्रकृतिक सुबन्तके साथ विकल्पसे समास होता है, वह 'तत्पुरुष' कहलाता है। इस सूत्रसे गुणान् अतीतः= गुणातीतः समास हुआ है।

द्वन्द्वातीतः-यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः। (४। २२)

द्वन्द्वम् अतीतः=द्वन्द्वातीतः।

तृतीया तत्पुरुष-जिसमें पूर्वपद 'तृतीया' विभक्तिमें हो। यथा-

ज्ञानदीपिते=आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते। (४। २७)

ज्ञानेन दीपिते=ज्ञानदीपिते।

२८१ कर्तृकरणे कृता बहुलम् २। १। ३२॥

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्।

कर्ता और करणमें तृतीयाका कृदन्तके साथ बहुलतासे समास होता है। इस सूत्रसे ज्ञानदीपिते में समास हुआ है।

बुद्धियुक्तः-बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। (२। ५०)

बुद्ध्या युक्तः-बुद्धियुक्तः।

चतुर्थी तत्पुरुष-जिसके विग्रहमें पूर्वपद चतुर्थ्यन्त हो।

२८२ चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः २। १। ३६॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्।

चतुर्थ्यन्त अर्थके लिये जो पदार्थ तद्वाचक शब्द हो उसके साथ और अर्थादियोंके साथ चतुर्थ्यन्तका समास विकल्पसे होता है। यथा—

संस्थापनार्थाय-धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। (४। ८)

(संस्थापनाय अयम्)

पञ्चमी तत्पुरुष-जिसके विग्रहमें पूर्वपद पञ्चम्यन्त हो।

योगभ्रष्टः-शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। (६। ४१)

योगाद् भ्रष्ट योगभ्रष्टः।

२८३ पञ्चमी भयेन २। १। ३७

पञ्चम्यन्तं भयवाचकसुबन्तेन सह वा समस्यते।

पञ्चम्यन्तका भयवाचक सुबन्तके साथ विकल्पसे समास होता है। यथा—

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्। (१८। ८)

कायक्लेशाद् भयं कायक्लेशभयं तस्मात्।

षष्ठी तत्पुरुष-जिसके विग्रहमें पूर्वपद षष्ठ्यन्त हो।

२८४ षष्ठी २। २। ८॥

सुबन्तेन प्राग्वत्।

षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकका सुबन्तके साथ समास विकल्पसे होता है। यथा—

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि। (२। ४७)

कर्मणां फलं कर्मफलं तस्य हेतुः।

प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च। (११। ३९)

प्रजायाः पतिः=प्रजापतिः।

सप्तमी तत्पुरुष-जिसके विग्रहमें पूर्वपद सप्तम्यन्त हो। यथा—
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु। (१८। ४५)

स्व कर्मणि निरतः-स्वकर्मनिरतः।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥ (९। ६)

आकाशे स्थितः=आकाशस्थितः।

प्रादि तत्पुरुष

जब किसी तत्पुरुषमें पूर्वपदके आरम्भमें प्रादियोंमेंसे कोई उपसर्ग आये तो वह 'प्रादि तत्पुरुष' कहलाता है। इसमें दूसरा पद कृदन्त होता है।

प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया (वा)।
अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया (वा)।
अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया (वा)।

यथा—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्। (६। २१)

इन्द्रियाणि अतिक्रान्तम्=अतीन्द्रियम्।

अत्यर्थम्-प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः। (७। १७)

अर्थम् अतिक्रान्तम्=अत्यर्थम्।

नञ् तत्पुरुष

जब निषेधवाचक 'नञ्' का सुबन्तके साथ समास होता है, तब उसे 'नञ्' तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्। (१८। १२)

न इष्टम् अनिष्टम्।

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः। (४। १७)

न कर्म अकर्म तस्य अकर्मणः।

२८५ नञ् २। २। ६॥

नञ् सुपा सह समस्यते।

'नञ्' का सुबन्तके साथ विकल्पसे समास होता है।

२८६ नलोपो नञः ६। ३। ७३॥

नञो नस्य लोप उत्तरपदे।

'नञ्' के 'न' का लोप होता है, उत्तरपद परे हो तो।

२८७ तस्मान्नुडचि ६। ३। ७४॥

लुप्तनकारान्नञ् उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात्।

लुप्त नकारवाले नञ् समासमें अजादि उत्तरपदको नुट्का आगम होता है।

इन सूत्रोंसे 'अनिष्टम् 'अकर्मणः' रूप निष्पन्न होते हैं।

उपपद तत्पुरुष

जब किसी तत्पुरुषका पहला पद 'अव्यय' तथा संज्ञा हो और उसके बिना समासके दूसरे शब्दका रूप नहीं बन सके तो वह 'उपपद' तत्पुरुष कहलाता है।

२८८ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३। १। ९२॥

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत्कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदं स्यात्।

सप्तम्यन्त पद कर्मणि इत्यादिमें वाच्यत्व से स्थित जो कुम्भादि तद्वाचक पद 'उपपद' होता है।

कर्मधारय (समानाधिकरण)

समाधिकरण तत्पुरुषको 'कर्मधारय' कहते हैं। इसमें विशेषण-विशेष्य तथा उपमान-उपमेयमें समास होता है।

२८९ तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः २। १। ४२

समानाधिकरणः तत्पुरुषः कर्मधारयसंज्ञकः स्यात्।

समानाधिकरण तत्पुरुष 'कर्मधारय' कहलाता है।

२९० विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २। १। ५७॥

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत्।

भेदकका समानाधिकरण भेद्यके साथ बहुलतासे समास होता है।

भेदक=विशेषण, भेद्य=विशेष्य।

२९१ उपमानानि सामान्यवचनैः २। १। ५५॥

उपमानवाची शब्दोंका समानधर्मवाची विशेषणोंके साथ समास होता है। यथा—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः। (१३। २२)

महान् चासौ ईश्वरः महेश्वरः।

त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः। (१८। ४)

पुरुषः व्याघ्रः इव=पुरुषव्याघ्रः।

द्विगु

संख्यापूर्वक तत्पुरुष 'द्विगु' कहलाता है। यह 'समाहार' के अर्थमें आता है।

२९२ संख्यापूर्वो द्विगुः २। १। ५२॥

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात्।

संख्यापूर्वक तत्पुरुष 'द्विगु' संज्ञक होता है।

२९३ द्विगुरेकवचनम् २। ४। १॥

द्विग्वर्थः समाहार एकवत् स्यात्।

द्विग्वर्थ समाहार एकवत् होता है।

२९४ स नपुंसकम् २। ४। १७॥

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात्।

समाहारमें 'द्विगु' और 'द्वन्द्व' नपुंसक होते हैं।

यथा—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। (२। ४५)

त्रयाणां गुणानां समाहारः त्रिगुणम्, (द्विगु) तस्य भावः त्रैगुण्यम्।

अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते। (१। ३५)

त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, (द्विगु) तस्य भावः त्रैलोक्यम्।

अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियां इष्टः। (भाष्यवचनम्)।

अकारान्त पद है उत्तरमें जिसके इस प्रकार का द्विगु समास स्त्रीलिङ्ग कहा जाता है—इस दृष्टिसे 'त्रिलोकी' में स्त्रीप्रत्यय आया।

३ बहुव्रीहि

अन्यपदप्रधानो बहुव्रीहिः—अर्थात् जिसमें अन्य पद प्रधान हो उसे 'बहुव्रीहि' कहते हैं।

२९५ अनेकमन्यपदार्थे २। २। २४॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते सः बहुव्रीहिः।

अनेक प्रथमान्त अन्य पदके अर्थमें वर्तमान विकल्पसे समस्त होते हैं और उसे 'बहुव्रीहि' कहते हैं।

२९६ सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २। २। ३५॥

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्।

सप्तम्यन्त और विशेषण बहुव्रीहि में पहले रखे जाते हैं। यथा—

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः। (४। १९)

ज्ञानाग्निना दग्धानि कर्माणि यस्य सः।

निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति। (२। ७१)

नास्ति ममत्वं यस्य स निर्ममः।

नास्ति अहङ्कारः यस्य स निरहङ्कारः।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः। (५। २५)

क्षीणानि कल्मषाणि येषां ते क्षीणकल्मषाः।

४ द्वन्द्वः

उभयपदप्रधानो द्वन्द्वः अर्थात् जिसके विग्रहमें दोनों खण्ड प्रधान हों, उसे द्वन्द्व कहते हैं। 'द्वन्द्व' के विग्रहमें 'च' लगता है। यथा—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः। (५। ४)

सांख्यं च योगश्च=सांख्ययोगौ।

'द्वन्द्व' के तीन भेद हैं—

(१) इतरेतर (२) समाहार (३) एकशेष

१ इतरेतर द्वन्द्व—जिसमें सभी पद प्रधान हों। इसमें 'च' लगता है।

२९७ चार्थे द्वन्द्वः २। २। २९॥

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स द्वन्द्वः।

अनेक सुबन्त 'च' के अर्थमें वर्तमान विकल्पसे समस्त होते हैं।

२९८ परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २। ४। २६॥

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्।

'द्वन्द्व' और 'तत्पुरुष' का लिङ्ग अगले पदके समान होता है।

२९९ अल्पाच्तरम् २। २। ३४॥

द्वन्द्वमें थोड़े अच्वाले पदोंका पूर्व निपात होता है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ (२। ३८)

सुखं च दुःखं च=सुखदुःखे। लाभश्च च अलाभश्च लाभालाभौ। जयश्च च अजयश्च=जयाजयौ।

२ समाहार द्वन्द्व

जिस समासमें समाहारका बोध हो। यथा—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः। (६। १३)

कायश्च शिरश्च ग्रीवा च=कायशिरोग्रीवम्।

३ एकशेष द्वन्द्व

जिसमें केवल एक पद शेष हो। यथा—

पितरौ=माता च पिता च। गीतामें एकशेषका उदाहरण उपलब्ध नहीं होता।

इति समासप्रकरणम्

अथ तद्धितप्रकरणम्

'मतुप्' प्रत्यय

३०० तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५। २। ९४॥

तद्अस्य, तद् अस्मिन् इत्यर्थे प्रथमान्तप्रातिपदिकात् मतुप् स्यात्।

वह इसका, वह इसमें इन अर्थोंमें प्रथमान्त प्रातिपदिकसे मतुप् प्रत्यय होता है।

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥ (कारिका) यथा—

अंशु+मतुप्=अंशुमान्।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्। (१०। २१)

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया। (१६। १५)

अभिजन+म (व) तुप्=अभिजनवान्।

३०१ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५। २। ३९॥

परिमाणार्थे यत्तदेतेभ्यः वतुप् स्यात्।

परिमाण अर्थमें विद्यमान यत्, तद्, एतद् इन शब्दोंसे वतुप् प्रत्यय होता है।

एतद्+परिमाणे वतुप्=एतावत् (१६। ११)

ज्ञान+म (व) तुप्=ज्ञानवताम्, ज्ञानवान्।

ज्ञानं ज्ञानवतामहम्। (१०। ३८)

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि। (३। ३३)

'अण्' प्रत्यय

३०२ तस्येदम् ४। ३। १२०

अण् स्यात्।

षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से 'इदम्' इस अर्थमें अण् प्रत्यय होता है।

असुर=तस्येदम् अण्=आसुरः (१६। ६), आसुरम् (७। १५)

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।

चन्द्रमस्=तस्येदम् अण्=चान्द्रमसम् (८। २५)।

तमस्=तस्येदम् अण्=तामसः (१८। ७), तामसाः (७। १२), तामसम् (१०। १३)।

श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।

ईश्वर=तस्येदम् अण्=ऐश्वरम्। पश्य मे योगमैश्वरम्। (९। ५; ११। ८)

पुरुष=तस्येदम् अण्=पौरुषम् (७। ८)।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।

मनस्=तस्येदम् अण्=मानसम् (१७। १६), मानसाः (१०। ६)।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।

अस्मद्=ममक=तस्येदम् अण्=मामकाः (१। १), मामकम् (१५। १२)।

मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।

रजस्=तस्येदम् अण्=राजसः (१८। २७), राजसाः (७। १२), राजसम् (१७। १२), राजसस्य (१७। ९)।

हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।

शरीर=तस्येदम् अण्=शारीरम् (४। २१)।

शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।

ऋजु=भावे अण्=आर्जवम् (१३। ७)।

कुशल=भावे अण्=कौशलम् (२। ५०)।

क्षत्र=भावे अण्=क्षात्रम् (१८। ४३)। मृदु=भावे अण्=मार्दवम् (१६। २)। मुनि=भावे अण्=मौनम् (१०। ३८)। मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्। युवन्=भावे अण्=यौवनम् (२। १३)। लघु=भावे अण्=लाघवम् (२। ३५)। शुचि=भावे अण्=शौचम् (१३। ७)। ओषधि=स्वार्थे अण्=औषधम् (९। १६)। शुचि=स्वार्थे अण्=शौचम् (१३। ७)।

३०३ तस्यापत्यम् ४। १। १२॥

षष्ठ्यन्तात् कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्तावक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः।

षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकसे अपत्य अर्थमें अणादि प्रत्यय होते हैं, विकल्पसे।

धृतराष्ट्र=अपत्ये अण्=धार्तराष्ट्रस्य (१। २३), धार्तराष्ट्राणाम् (१। १९), धार्तराष्ट्राः (२। ६), धार्तराष्ट्रान् (१। २०)। यथा-

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।

पाण्डु+अपत्ये अण्=पाण्डव। (४। ३५)

पृथा+अपत्ये अण्=पार्थ (१। २५)।

जह्नु+अपत्ये अण्=जाह्नवी (१०। ३१)

स्रोतसामस्मि जाह्नवी।

ब्रह्मन्+अपत्ये अण्=ब्राह्मणस्य (२। ४६), ब्राह्मणाः (९। ३३), ब्राह्मणे (५। १८)।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

भरत+अपत्ये अण्=भारत (१८। ६२)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

वसुदेव+अपत्ये अण्=वासुदेवः (७। १९)।

वसु+अपत्ये अण्=वासवः (१०। २२)।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।

दनु+अपत्ये अण्=दानवाः (१०।१४) देवा+अपत्ये अण् दैवः (१६।६), दैवम् (४।२५)। मित्र+अपत्ये अण्=मैत्र। (१२।१३)

३०४ तदधीते तद्वेद ४।२।५९॥

अण् स्यात्।

जो जिसको पढ़ता है या जानता है—इस अर्थमें 'अण्' प्रत्यय होता है। यथा—त्रिविद्या+अण्=त्रैविद्या।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते। (९।२०)

ब्रह्मन+अधीते अण्=ब्राह्मी (२।७२)।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

मृगशीर्ष+अण्=मार्गशीर्षः (१०।३५)

मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।

मित्र+अण्=मैत्रः (१२।१३)।

'त्व', 'तल्' प्रत्यय

३०५ तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९॥

भावार्थे त्वतलौ प्रत्ययौ स्तः।

भाव अर्थमें 'त्व' और 'तल्' प्रत्यय होते हैं। यथा—

अनादि+त्व=अनादित्वात् (१३।३१)।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।

अमृत+त्व=अमृतत्वाय (२।१५)।

अलोलुप+त्व=अलोलुप्त्वम् (१६।२)।

एक+त्व=एकत्वेन (९।१५), एकत्वम् (६।३१)।

कर्तृ+त्व=कर्तृत्वम् (५।१४) यथा—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।

चञ्चल+त्व=चञ्चलत्वात् (६।३३)।

निर्गुण+त्व=निर्गुणत्वात् (१३।३१)।

निर्मल+त्व=निर्मलत्वात् (१४।६)।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।

सम+त्व=समत्वम् (२।४८)।

समत्वं योग उच्यते।

सम+तल्=समता। अहिंसा समता तुष्टिः (१०।५)

'वति' प्रत्यय

३०६ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५॥

तृतीयान्तात्तुल्येऽर्थे 'वति' प्रत्ययः स्यात्, यत्तुल्यं तत्क्रिया चेत्।

तृतीयान्त प्रातिपदिकसे तुल्य अर्थमें वति प्रत्यय होता है।

आदित्य+वति=आदित्यवत् (५।१६)।

आश्चर्य+वति=आश्चर्यवत् (२।२९)।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्।

उदासीन+वति=उदासीनवत् (९।९)।

कृत्स्न+वति=कृत्स्नवत् (१८।२२)।

तद्+वति=तद्वत् (२।७०)।

'इतच्' प्रत्यय

३०७ तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६॥

अस्य संजातं इत्यर्थे तारकादिगणपठितशब्दात् इतच् स्यात्।

'अस्य संजातम्' के अर्थमें तारकादिगणपठित शब्दोंसे 'इतच्' प्रत्यय होता है।

अध्यात्मसंज्ञा+इतच्=अध्यात्मसंज्ञितम् (११।१)।

कर्मसंज्ञा+इतच्=कर्मसंज्ञितः (८।३)।

योगसंज्ञा+इतच्=योगसंज्ञितम् (६।२३)।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।

पुष्प+इतच्=पुष्पिताम् (२।४२)।

'तरप्', ईयसुन्' प्रत्यय

३०८ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७॥

द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः।

दो मेंसे एककी अतिशय विभक्ति करनेवाले उपपदके होते हुए सुबन्त और तिङन्तसे 'तरप्' और 'ईयसुन्' प्रत्यय होते हैं।

दुःख+तरप्=दुःखतरम् (२।३६)।दुर्लभ+तरप्=दुर्लभतरम् (६।४२)।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।
अणु+('टि'का लोप) ईयसुन्=अणीयांसम् (८। ९)।
गुरु+ईयसुन्=गरीयः (२। ६), गरीयसे (११। ३७)।
'ईयसुन्' तथा 'इष्ठ' आदि प्रत्यय होनेपर 'गुरु'को 'गर्' होता है।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।

प्रशस्य=श्र+ईयसुन्=श्रेयः (१। ३१), श्रेयान् (३। ३५)।
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

'छ=ईय' प्रत्यय

३०९ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् १। १। ७३॥

यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं स्यात्।

जिस पदके अचोंमें आदि 'अच्' 'वृद्धि' होता है, उसकी 'वृद्ध' संज्ञा होती है।

३१० त्यदादीनि च १। १। ७४॥

वृद्धसंज्ञानि स्युः।

'त्यद्' आदि सर्वनामोंकी भी 'वृद्ध' संज्ञा होती है।

३११ वृद्धाच्छः ४। २। ११४॥

वृद्धसंज्ञकात् छः स्यात्।

'वृद्ध संज्ञावाले पदोंसे 'छ' प्रत्यय होता है। यथा—
अस्मद्+छ=ईय=अस्मदीयैः (११। २६)।
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः।
तदर्थ+छ=ईय=तदर्थीयम् (१७। २७)।

'ढक्=एय' प्रत्यय

३१२ स्त्रीभ्यो ढक् ४। १। १२०॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् स्यात्।

अपत्यार्थमें स्त्रीप्रत्ययान्तोंसे ढक् प्रत्यय होता है
द्रौपदी+अपत्ये ढक्=एय=द्रौपदेयाः (१। ६)।
विनता+अपत्ये ढक्=एय=वैनतेयः (१०। ३०)। यथा—

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।

कुन्ती+अपत्ये ढक्=एय कौन्तेय (२। १४), कौन्तेयः (१। २७)। वृष्णि+अपत्ये ढक्=एय=वार्ष्णेय (३। ३६)।

३१३ अत इनिठनौ ५। २। ११५॥

अदन्तात् मत्वर्थीये इनिठनौ स्तः।

अकारान्त पदसे मत्वर्थीय 'इनि' और 'ठन्' प्रत्यय होते हैं।

आगमापाय+इनि=आगमापायिनः (२। १४)।

कर्मसङ्ग+इनि=कर्मसङ्गिनाम् (३। २६), कर्मसङ्गिषु (१४। १५)

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।

कर्मन्+इनि=कर्मिभ्यः (६। ४६)।

किरीट+इनि=किरीटी (११। ३५), किरीटिनम् (११। ४६)।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।

क्षमा+इनि=अथवा क्षम्+इनि=क्षमी (१२। १३)।

क्षेत्र+इनि=क्षेत्री (१३। ३३)। चक्र+इनि=चक्रिणम् (११। १७)

ज्ञान+इनि=ज्ञानिनः (७। १७)। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः। दीर्घसूत्र+इनि=दीर्घसूत्री (१८। २८)। दुष्कृत+इनि= दुष्कृतिनः (७। १५) न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।

मौन+इनि=मौनी (१२। १९)।

'ठञ्' प्रत्यय

३१४ कालाट्ठञ् ४। ३। ११॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात्।

कालवाची शब्दोंसे 'ठञ्' होता है।

अत्यन्त+ठञ्=आत्यन्तिकम् (६। २१)। एकान्त+ठञ्=ऐकान्तिकस्य (१४। २७)। पूर्वदेह+ठञ्=पौर्वदेहिकम् (६। ४३) यथा—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।

'ण्य' प्रत्यय

३१५ दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ४। १। ८५॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेऽर्थे ण्यः स्यात्।

प्राग्दीव्यतीय अर्थोंमें दिति, अदिति, आदित्य और पत्युत्तर-पदसे 'ण्य' प्रत्यय होता है। यथा—

अदिति+अपत्ये ण्य=आदित्यान् (११।६), आदित्यानाम् (१०।२१)।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।

'यत्' प्रत्यय

३१६ दिगादिभ्यो यत् ४। ३। ५४।

दिगादिगणपठितशब्दात् यत् प्रत्ययो भवति।

दिगादि शब्दोंसे 'यत्' प्रत्यय होता है।

आदि+यत्=आद्यम् (८। २८)। योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।

तुला+यत्=तुल्यः (१४। २५)। धर्म+यत्=धर्म्यम् (२। ३३), धर्म्यात् (२। ३१)। धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।

न्याय+यत्=न्याय्यम् (१८। १५)। मुख+यत्=मुख्यम् (१०। २४)। रहस्+यत्=रहस्यम् (४। ३)।

'ष्यञ्' प्रत्यय

३१७ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ५। १। १२३॥

वर्णवाचीशब्दात् दृढादिगणपठिताच्च ष्यञ्चादिमनिच्।

वर्णवाचक शब्दोंसे तथा दृढ़ादिगणपठित शब्दोंसे ष्यञ् प्रत्यय होता है, पक्षमें इमनिच्प्रत्यय भी होता है।

३१८ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५। १। १२४॥

कर्मणि भावे च गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः ष्यञ् स्यात्।

कर्म और भावमें गुण, वचन, ब्राह्मणादिगणपठित शब्दोंसे ष्यञ् प्रत्यय होता है।

अधिपति+भावे ष्यञ्=आधिपत्यम् (२। ८)

क्लीब+भावे ष्यञ्=क्लैब्यम् (२। ३)।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

चतुर्वर्ण+भावे ष्यञ्=चातुर्वर्ण्यम् (४। १३)।

(चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्। वा.)

चतुर्वर्णादि शब्दोंसे स्वार्थमें ष्यञ् प्रत्यय होता है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

त्रिगुण+भावे ष्यञ्=त्रैगुण्य (२। ४५)

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। त्रिलोक+भावे ष्यञ्=त्रैलोक्य (१। ३५)। दक्ष+भावे ष्यञ्=दाक्ष्यम् (१८। ४३)।

निष्कर्मन्+भावे ष्यञ्=नैष्कर्म्यम् (३। ४)।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। परुष+भावे ष्यञ्=पारुष्यम् (१६। ४)। महात्मन्+भावे ष्यञ्=माहात्म्यम् (११। २)।

विराग+भावे ष्यञ्=वैराग्यम् (१८। ५२), वैराग्येण (६। ३५)।

ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।

शूर+भावे ष्यञ्=शौर्यम् (१८। ४३)। विश्+यञ्=वैश्यः (९। ३२) स्वार्थे ष्यञ्। शिवि+यञ्, शैव्यः, अपत्यार्थीय।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।

'यक्' प्रत्यय

३१९ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५। १। १२८॥

पतिशब्दान्तात् पुरोहितादिगणपठिताच्च भावे कर्मणि च यक् स्यात्।

पति शब्दान्त और पुरोहितादिगणपठित शब्दोंसे भाव और कर्ममें 'यक्' प्रत्यय होता है।

आस्तिक (अस्ति+ठक्) भावे+यक्=आस्तिक्यम् (१८। ४२)।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।

राजन्+यक्=राज्यम् (१। ३२), राज्येन (१। ३२)।

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।

'अकिनिच्' प्रत्यय

३२० एकादाकिनिच्चासहाये ५। ३। ५२॥

चात्कन्लुकौ।

एक शब्दसे 'अकिनिच्' प्रत्यय भी होता है। असहाय अर्थमें। 'कन्' और 'लुक्' भी होते हैं। एकः, एककः, एकाकी।

एक+अकिनिच्=एकाकी (६। १०)

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥

'विनि' प्रत्यय

३२१ अस्मायामेधास्रजो विनिः ५। २। १२१॥

असन्तात् मायामेधास्रग्भ्यः विनिः।

असन्त पदसे, माया, मेधा, स्रज्से मत्वर्थीय 'विनि' प्रत्यय होता है।

तेजस्+विनि=तेजस्विनाम् (७। १०)।

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्। मेधा+विनि=मेधावी (१८।१०)। तपस्+विनि=तपस्विभ्यः। तपस्विभ्योऽधिको योगी (६।४६)।

'घ=इय' प्रत्यय

३२२ क्षत्राद्घः ४। १। १३८॥

क्षत्रशब्दात् भवार्थे घः स्यात्।

'क्षत्र' शब्दसे 'तत्र भवः' इस अर्थमें 'घ' प्रत्यय होता है। 'घ' को इय आदेश होता है।

क्षत्र+घ=इय=क्षत्रियस्य (२। ३१) धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।

'मयट्' प्रत्यय

३२३ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४। ३। १४३॥

प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्याद्विकारावयवयोः।

प्रकृतिमात्रसे विकार और अवयव अर्थमें 'मयट्' विकल्पसे होता है।

३२४ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४। ३। १४४॥

वृद्धसंज्ञकाच्छरादिगणपठिताच्च नित्यं मयट् स्यात्, विकारावयवयोः।

विकार और अवयव अर्थमें वृद्धसंज्ञक,शरादिगणपठित शब्दोंसे नित्य मयट् प्रत्यय होता है।

तेजस्+मयट्=तेजोमयम् (११। ४७)। अस्मद्+मयट्=मन्मयाः। वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः। (४। १०)

सर्वाश्चर्य+मयट्=सर्वाश्चर्यमयम् (११। ११)

'तयप्' प्रत्यय

३२५ संख्याया अवयवे तयप् ५। २। ४२॥

संख्याया अवयवे तयप् स्यात्।

संख्यासे अवयव अर्थमें 'तयप्' होता है।

३२६ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ५। २। ४३॥

द्वित्रिशब्दाभ्यां तयप् स्थाने अयज्वा स्यात्।

'द्वि' और 'त्रि' से 'तयप्' के स्थानमें 'अयच्' विकल्पसे होता है।

त्रि+तयप्=अयच्=त्रयम् (१६। २१)।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।

'साति' प्रत्यय

३२७ विभाषा साति कात्स्न्र्ये ५। ४। ५२॥

च्विविषये सातिर्वा स्यात् साकल्ये।

'च्वि' के विषयमें 'साति' प्रत्यय होता है विकल्पसे यदि सम्पूर्णता द्योत्य हो। भस्मन्+साति=भस्मसात् (४। ३७)। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।

'इमनिच्' प्रत्यय

३२८ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५। १। १२२॥

षष्ठ्यन्तेभ्यः पृथ्वादिभ्यो भावेऽर्थे 'इमनिच्' प्रत्ययो वा।

षष्ठ्यन्त पृथ्वादिगण पठित शब्दोंसे भावमें 'इमनिच्' प्रत्यय विकल्पसे होता है।

महत्+इमनिच्=महिमानम् (११। ४१)।

अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।

'ट्युल्' प्रत्यय

३२९ सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४। ३। २३॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च।

सायं आदिसे ट्यु, ट्युल् प्रत्यय होते हैं और उन्हें तुट्का आगम होता है।

सना=ट्यु=अन तुडागमः सना+तुट्+अन=सनातनः (११। १८) सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।

'इष्ठन्' प्रत्यय

३३० अतिशायने तमबिष्ठनौ ५। ३। ५५॥

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थ एतौ स्तः।

विशिष्ट अर्थका बोध करानेके लिये स्वार्थमें तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं।

३३१ प्रशस्यस्य श्रः ५। ३। ६०॥

अस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः।

इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे रहते प्रशस्य शब्दको श्र आदेश होता है।

प्रशस्य+इष्ठन्, श्र+इष्ठन्=श्रेष्ठः (३। २१)। यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

'मात्रच्' प्रत्यय

३३२ प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ५। २। ३७॥

प्रमाणेऽर्थे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः प्रत्ययाः भवन्ति।

प्रमाण अर्थमें द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय होते हैं।

निमित्त+मात्रच्=निमित्तमात्रम् (११। ३३)।

मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।

'शालच्' प्रत्यय

३३३ वेः शालच्छङ्कटचौ ५। २। २८॥

क्रियाविशिष्टसाधनवाचकात्स्वार्थे।

क्रियाविशिष्टसाधनवाचक वि से 'शालच्' और 'शङ्कटच्' प्रत्यय होते हैं।

वि+शालच्=विशालम् (९। २१)। ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

३३४ चरति ४। ४। ८॥

तृतीयान्ताद् गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात्।

तृतीयान्त प्रातिपदिकसे 'चरति' अर्थमें ठक् प्रत्यय होता है।

निष्कृत्या चरति। निष्कृति+ठक्=नैष्कृतिकः (१८। २८)।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते॥

'डट्' प्रत्यय

३३५ तस्य पूरणे डट् ५। २। ४८॥

संख्यावाचकात् पूरणेऽर्थे डट् स्यात्।
संख्यावाचक शब्दोंसे पूरण अर्थमें डट् प्रत्यय होता है।
पञ्चन्+पूरणे डट्=पञ्चमम् (१८। १४)
दैवं चैवात्र पञ्चमम्।

'ञ्यः' प्रत्यय

३३६ गम्भीराञ्ञ्यः ४। ३। ५८॥
गम्भीर शब्दात् ञ्यः स्यात्।
गम्भीर शब्दसे ञ्य प्रत्यय होता है।
गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम्।
पञ्चजनादुपसंख्यानम् (वा.)
पञ्चजन शब्दसे भी ञ्य प्रत्यय होता है।
पञ्चजन+भवे ञ्यः=पाञ्चजन्यम् (१। १५)।
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।

'अञ्' प्रत्यय

३३७ अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४। १। १०४॥
एभ्योऽञ् गोत्रे। ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे।
बिदादिगणपठित शब्दोंसे अञ् प्रत्यय होता है।
पुत्र+अपत्ये अञ्=पौत्राः (१। ३४)। मनु+अपत्ये अञ्=मानवः (३। १७)।
मनु+अपत्ये अञ्=षुक्=मानुषम् (११। ५१), मानुषे (४। १२)।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।

'अच्' प्रत्यय

३३८ अर्शआदिभ्योऽच् ५। २। १२७॥
अर्शादिगणपठितशब्दादच् स्यात्।
अर्श आदि गणपठित शब्दोंसे 'अच्' प्रत्यय होता है।
पुण्य+अच्=पुण्यः (७। ९) अतो गुणे पररूप।
पाप+अच्=पापाः (३। १३)।
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।

इति तद्धितप्रकरणम्

अथ तिङन्तप्रकरणम्

संस्कृतमें लकार दस हैं—

लकार— लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट् } ट् इत्
लङ् लिङ् लुङ् लृङ् } ङ् इत्

इनमें पाँचवाँ लकार ('लेट्' लकार) वेदमें ही प्रयुक्त होता है ये लकार धातुओंसे लगते हैं। धातु दो प्रकारके हैं—

१. सकर्मक, २. अकर्मक

सकर्मक—धातु वे हैं, जिनमें कर्मकी आकाङ्क्षा हो।

अकर्मक—धातु वे हैं, जिनमें कर्मकी आकाङ्क्षा न हो।

क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षाम्।
सकर्मकं तं सुधियो वदन्तिशेषस्ततो धातुरकर्मकः स्यात्॥

(कारिका)

जहाँ कर्तृपदके साथ युक्त क्रियापद 'किम्' की अपेक्षा रखता है, वह धातु 'सकर्मक' होती है। शेष धातु 'अकर्मक' हैं।

३३९ लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ३। ४। ६९॥

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च।

लकार सकर्मक धातुओंसे 'कर्म' और 'कर्ता' में एवं अकर्मक धातुओंसे 'भाव' और 'कर्ता' में होते हैं।

कुरु-कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्। (४। १५)

यहाँ धातु 'कृ' सकर्मक है, क्योंकि यहाँ कुरुके बाद 'किम्'की अपेक्षा रहती है और यहाँ 'कर्ता' में प्रत्यय हुआ है।

भवति—क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा। (४। १२)

यहाँ 'भू' धातु 'अकर्मक' है।

'अकर्मक' धातुओंकी गणना निम्न है—

लज्जासत्तास्थितिजागरणं वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम्।

शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मकमाहुः ॥ (कारिका)

३४० वर्तमाने लट् ३। २। १२३॥

वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात्।

वर्तमान कालकी क्रियावृत्ति धातुसे 'लट्' लकार होता है।

३४१ तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथां-ध्वमिड्वहिमहिङ् ३। ४। ७८

एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः।

लकारके स्थानमें 'तिबादि' आदेश होते हैं।

संस्कृतके धातु दो पदोंमें आते हैं—

(१) परस्मैपद, (२) आत्मनेपद

परस्मैपदके प्रत्यय

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरुष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरुष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपदके प्रत्यय

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	त	आताम्	झ
मध्यम पुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरुष	इड्	वहि	महि (ङ्)

क्रियाके पुरुष तीन होते हैं—

(१) प्रथम पुरुष (२) मध्यम पुरुष (३) उत्तम पुरुष

क्रियाके वचन भी तीन होते हैं—

(१) एकवचन (२) द्विवचन (३) बहुवचन

३४२ तिङ्स्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १। ४। १०१॥

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः।

'तिङ्' के 'पदस्मैपद' और 'आत्मनेपद' सम्बन्धी तीन–तीन त्रिकोंकी प्रथम, मध्यम, उत्तम संज्ञा होती है।

३४३ तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०२॥

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि वचनानि प्रत्येकमेक-वचनादिसंज्ञानि स्युः।

लब्ध प्रथमादिसंज्ञक त्रिकोंके तीनों वचनोंकी क्रमसे एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञा होती है।

गण

संस्कृतमें समस्त धातु दस गणोंमें विभक्त हैं। जो धातु जिस गणके आदिमें आता है, वह गण उसीके नामसे पुकारा जाता है—जैसे भ्वादिगण=भू+आदि गण।

लकारोंका प्रयोग

लट्	वर्तमानकालमें	
लिट्	भूतकालमें	परोक्ष भूतमें
लङ्		सामान्य भूतमें
लुङ्		अनद्यतन भूतमें
लुट्	भविष्यत् कालमें	अनद्यतन भविष्यत्में
लृट्	"	सामान्य भविष्यत्में
विधि लिङ्, लोट्		विधिमें (आज्ञा आदिमें)
आशीर्लिङ्		आशीर्वादके अर्थमें
लृङ्		क्रियातिपत्ति (शर्त) के अर्थमें
लेट्		इसका प्रयोग वेदमें होता है

लकारोंके अन्य दो भेद

(१) सार्वधातुक, (२) आर्धधातुक

लट्, लोट्, लङ्, विधि लिङ्—ये चार लकार सार्वधातुक हैं।

शेष लकार आर्धधातुक हैं।

३४४ तिङ्शित्सार्वधातुकम् ३। ४। ११३॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः।

धातुओंके अधिकारमें कहे 'तिङ्' और 'शित्' सार्वधातुक होते हैं।

३४५ आर्धधातुकं शेषः ३। ४। ११४॥

तिङ्शिद्‌भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात्।

तिङ्, शित्‌से भिन्न धातुसे किया हुआ प्रत्यय 'आर्धधातुक' संज्ञावाला होता है।

धातुओंके अन्य भेद

(१) सेट् (२) अनिट् (३) वेट्

सेट्=इट्‌सहित ऐसी धातुएँ जिनके आगे प्रत्ययसे पूर्व 'इ' हो। इट् आर्धधातुक प्रत्ययोंमें होता है। यथा—

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः। (२। ३६)

(२) अनिट्=इट्‌रहित ऐसी धातुएँ, जिनके आगे प्रत्ययसे 'इ' न हो। यथा—

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला। (२। ५३)

(३) 'वेट्' ऐसी धातुएँ, जिनमें 'इ' विकल्पसे आये। यथा—

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः। (१२। ८)

'इट्' न होनेपर 'निवत्स्यसि' रूप बनता है।

भ्वादिगण

भू (सत्तायाम्)

लट् लकार (वर्तमानकालके अर्थमें)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरुष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरुष	भवामि	भवावः	भवामः

'लट्' लकारके प्रत्यय

पुरुष	**ए. व.**	**द्वि.व.**	**ब. व.**
प्रथम पुरुष	ति	तः	अन्ति
मध्यम पुरुष	सि	थः	थ
उत्तम पुरुष	मि	वः	मः

यथा—

भवति-क्रोधाद् भवति सम्मोहः। (२। ६३)

भवतः-प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च। (१४। १७)

भवन्ति-अन्नाद् भवन्ति भूतानि। (३। १४)

निष्पत्तिः—भू+ति इस स्थितिमें—

३४६ कर्तरि शप् ३। १। ६८॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप्।

कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते धातुसे 'शप्' होता है। शपौ इतौ। 'शप्' मेंसे 'श्' 'प्' का लोप करके 'अ' विकरण शेष बचता है।

इस सूत्रसे धातु और प्रत्ययके मध्य में 'अ' विकरण लगाकर भू+अ+ति।

३४७ सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७। ३। ८४॥

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः।

सार्वधातुक, आर्धधातुक परे रहते इगन्त अङ्गको 'गुण' होता है। इससे भो+अ+ति, फिर 'ओ' को 'अव्' करके 'भवति'।

भव्+अ+मि इस स्थितिमें—

३४८ अतो दीर्घो यञि ७। ३। १०१॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके।

यञादि सार्वधातुक परे रहते अदन्त अङ्गको दीर्घ होता है। इससे दीर्घ करके 'भवामि' रूप निष्पन्न हुआ।

लिट् लकार (परोक्ष भूत)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
मध्यम पुरुष	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उत्तम पुरुष	बभूव	बभूविव	बभूविम

'लिट्' लकारके प्रत्यय

प्रथम पुरुष	अ (णल्)	अतुस्	उस्
मध्यम पुरुष	थ (थल्)	अथुस्	अ
उत्तम पुरुष	अ (णल्)	व	म

निष्पत्तिः—भू लिट् तिप्।

३४९ परोक्षे लिट् ३। २। ११५॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्।

भूत अनद्यतन परोक्षार्थवृत्ति धातुसे लिट् होता है। लक्षण—बीती हुई रातके उत्तरार्धसे आनेवाली रातके पूर्वार्ध तकका समय 'अद्यतन' है, उससे भिन्न 'अनद्यतन' है।

३५० परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३। ४। ८२॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः।

'लिट्' के स्थानमें तिबादि नौके णलादि नौ होते हैं। जैसे ऊपर चित्रमें।

३५१ भुवो वुग् लुङ्लिटोः ६। ४। ८८॥

भुवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि।

'भू' को 'वुक्' का आगम होता है लुङ्लिट् सम्बन्धी अच् परे हो तो।

३५२ लिटि धातोरनभ्यासस्य ६। १। ८

लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्त आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य।

लिट् परे रहते अभ्यासरहित धातुके एकाच् अवयवको द्वित्व

होता है, आदिभूत 'अच्' से परे तो दूसरेको। भूव् भूव् अ इस स्थितिमें—

३५३ पूर्वोऽभ्यासः ६। १। ४॥

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात्।

यहाँ जो ये दोनों विहित हुए हैं उनमें पहलेकी 'अभ्यास' संज्ञा होती है।

३५४ हलादिः शेषः ७। ४। ६०॥

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अन्यहलो लुप्यन्ते।

अभ्यासका आदि हल् शेष रहता है अन्य हलोंका लोप होता है।

इस सूत्रसे भू-भूव् अ इस स्थितिमें—

३५५ ह्रस्वः ७। ४। ५९॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात्।

अभ्यासके अच्को ह्रस्व होता है।

३५६ भवतेरः ७। ४। ७३॥

भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि।

'लिट्' परे रहते 'भू' धातुके अभ्यासके 'उ' को 'अ' होता है।

इससे भ भूव इस स्थितिमें—

३५७ अभ्यासे चर्च ८। ४। ५४॥

अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च।

अभ्यासमें झलोंको 'जश्' और खयोंको 'चर्' होते हैं।

इससे 'भ' को ब करके 'बभूव'।

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह। (२। ९)

३५८ लिट् च ३। ४। ११५॥

लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः।

लिडादेश तिङ्की आर्धधातुक संज्ञा होती है।

३५९ आर्धधातुकस्येड्वलादेः ७। २। ३५॥

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्याल्लिटि।

वलादि आर्धधातुकको 'इट्' का आगम हो लिट्में। बभूविथ।

लुट् लकार (अनद्यतन भविष्यत्के अर्थमें)

प्र. पु.	भविता	भवितारौ	भवितारः
म. पु.	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
उ. पु.	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

लुट् लकारके प्रत्यय

प्र. पु.	तास्	तारौ	तारः
म. पु.	तासि	तास्थः	तास्थ
उ. पु.	तास्मि	तास्वः	तास्मः

यथा—

भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि। (१८। ६९)

निष्पत्तिः—

३६० अनद्यतने लुट् ३। ३। १५॥

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट्॥

भविष्यत्—अनद्यतन अर्थमें धातुसे लुट् होता है।

३६१ स्यतासी लृलुटोः ३। १। ३३॥

धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटोः परतः।

लृङ्, लृट् और लुट् परे होनेपर धातुसे 'स्य' और 'तास्' प्रत्यय होते हैं।

३६२ लुटः प्रथमस्य डारौरसः २। ४। ८५॥

डा रौ रस् एते क्रमात् स्युः।

'लुट्' के प्रथम पुरुषके तिप्, तस्, झिके स्थानमें डा-रौ-रस् आदेश होते हैं।

३६३ तासस्त्योर्लोपः ७। ४। ५०॥

तासेरस्तेश्च सस्य लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये परे।

सादि प्रत्यय परे होनेपर 'तास्' और 'अस्' के 'स्' का लोप होता है।

'स्' का लोप करके 'भविता' रूप निष्पन्न हुआ।

लृट् लकार (भविष्यत्के अर्थमें)

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

यथा—

भविष्यति-इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्। (१६। १३)

भविष्यन्ति-ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे। (११। ३२)

भविष्यामः-न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् (२। १२)

निष्पत्तिः—

३६४ लृट् शेषे च ३। ३। १३॥

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा।

क्रियार्थक क्रियाके होने अथवा न होनेपर धातुसे भविष्यत्-अर्थमें 'लृट्' होता है।

भू+ति इस स्थितिमें सू० ३६० से 'स्य' करके भू+स्य+ति 'इट्' का आगम, गुण, अव् तथा ष्य करके 'भविष्यति'।

लोट् लकार (आज्ञाके अर्थमें)

प्र० पु०	भवतु, भवतात्	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव, भवतात्	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

लोट् लकारके प्रत्यय

प्र०पु०	तु, तात्	ताम्	अन्तु
म०पु०	(हि) तात्	तम्	त
उ०पु०	आनि	आव	आम

यथा—

बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव। (१८। ५७)

निष्पत्तिः—

३६५ लोट् च ३। ३। १६२॥

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् स्यात्।

विधि आदि अर्थोंमें धातुसे 'लोट्' होता है।

३६६ आशिषि लिङ्लोटौ ३। ३। १७३॥

आशीर्वादार्थे लिङ्लोटौ एतौ स्तः।

आशीर्वाद अर्थमें धातुसे लिङ् और लोट् होते हैं।

भू अ ति इस स्थितिमें—

३६७ एरुः ३। ४। ८६॥

लोट् इकारस्य उः स्यात्।

लोट्के 'इ' को 'उ' होता है। इससे 'भवतु'।

३६८ तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७। १। ३५॥

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा।

आशीर्वाद अर्थमें 'तु' और 'हि' को 'तातङ्' विकल्पसे हो। भवतात्।

३६९ लोटो लङ्वत् ३। ४। ८५॥

लोटस्तामादयः सलोपश्च।

'लोट्' में 'लङ्' की तरह 'ताम्' आदि और 'स्' का लोप होता है। भवताम्।

३७० तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः ३। ४। १०१॥

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात् स्युः।

'ङित्' चारोंको तामादि क्रमसे होते हैं।

३७१ सेर्ह्यपिच्च ३। ४। ८७॥

लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च।

लोट्के 'सि' को 'हि' होता है और वह 'अपित्' होता है।

३७२ अतो हेः ६। ४। १०५॥

अतः परस्य हेर्लुक्।

अदन्तसे परे 'हि' का 'लुक्' होता है। भव।

३७३ मेर्निः ३। ४। ८९॥

लोटो मेर्निः स्यात्।

लोट्के 'मि' को 'नि' आदेश होता है।

३७४ आडुत्तमस्य पिच्च ३। ४। ९२

लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च।

लोट्के उत्तम पुरुषको 'आट्' का आगम होता है और वह 'पित्' होता है। भवानि।

३७५ नित्यं ङितः ३। ४। ९९

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः।

ङित्-सम्बन्धी सकारान्त उत्तम पुरुषके 'स्' का लोप होता है। भवाव।

लङ् लकार (अनद्यतन भूतमें)

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

लङ् लकारके प्रत्यय

प्र० पु०	त्	ताम्	अन्
म० पु०	स्	तम्	त
उ० पु०	अम्	आव	आम

यथा—अभवत्-स शब्दस्तुमुलोऽभवत्। (१। १३)

३७६ अनद्यतने लङ् ३। २। १११॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अनद्यतनभूतार्थवृत्ति धातुसे लङ्लकार होता है।

३७७ लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६। ४। ७१॥

एष्वङ्गस्याट् स्यात्।

लुङ्-लङ्-लृङ्के परे होनेपर अङ्गको अट्का आगम होता है। ('अट्' का आगम सदा आदिमें होता है)

३७८ इतश्च ३। ४। १००॥

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः।

ङित्—लकारके परस्मैपदसम्बन्धी 'इ' का लोप होता है।

निष्पत्तिः—भू+अ+ति इस स्थितिमें सू० ३७६ से धातुके पूर्व 'अट्' का आगम करके सू० ३७७ से 'ति' के 'इ' का लोप करके 'भू' के 'ऊ को 'ओ' और ओ को 'अव्' करके 'अभवत्।'

विधिलिङ् लकार (प्रेरणा आदि अर्थोंमें)

प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
म० पु०	भवेः	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

विधिलिङ्के प्रत्यय

प्र० पु०	ईत्	ईताम्	ईयुः
म० पु०	ईः	ईतम्	ईत
उ० पु०	ईयम्	ईव	ईम

३७९ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१॥

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात्।

प्रेरणा, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थना-इन अर्थोंमें धातुसे लिङ् लकार होता है।

३८० यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३॥

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च।

लिङ्के परस्मैपदको 'यास्' (यासुट्) का आगम होता है और वह उदात्त एवं ङित् होता है।

३८१ अतो येयः ७।२।८०॥

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्येतस्य इय्।

'अत्' से परे सार्वधातुकके अवयव 'यास्' को 'इय्' आदेश होता है।

३८२ लोपो व्योर्वलि ६।१।६६॥

वकारयकारयोर्लोपः स्याद् वलि।

'वल्' परे होनेपर यकार तथा वकारका लोप होता है।

निष्पत्तिः—भू अ ति इस स्थितिमें सू० ३७९ से (यासुट्)

'यास्' का आगम करके फिर सू० ३८० से 'यास्' को 'इय्' करके फिर सू० ३८१ से 'य' का लोप करके तथा सू० ३७७ से 'ति' के 'इ' का लोप करके 'भवेत्' रूप निष्पन्न हुआ। 'झि' के स्थानमें 'जुस्' करके 'भवेयुः' रूप बनता है।

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
म० पु०	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
उ० पु०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

आशीर्लिङ् के प्रत्यय

प्र० पु०	यात्	याताम्	युः
म० पु०	याः	यातम्	यात
उ० पु०	याम्	याव	याम

३८३ किदाशिषि ३। ४। ११६॥

आशिषि लिङो यासुट् कित्।

आशीर्वादमें लिङ्का 'यासुट्' 'कित्' होता है।

३८४ क्ङिति च १। १। ५॥

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः।

गित्, कित्, ङित् निमित्तक इग्लक्षणको गुण तथा वृद्धि नहीं होते।

निष्पत्तिः—भू+ति इस स्थितिमें सू० ३७९ से 'यास्' (यासुट्) का आगम करके और सू० ३८२ से 'यास्' 'कित्' होनेसे उसमें गुणका निषेध होनेसे 'ति' के 'इ' तथा 'यास्' के स्का लोप करके भूयात्।

लुङ् लकार (भूतार्थमें)

प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म० पु०	अभूः	अभूतम्	अभूत
उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम

लङ्—लुङ्के प्रत्यय एक ही हैं।

३८५ लुङ् ३। २। ११०॥

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्।

३८६ च्लि लुङि ३। १। ४३॥

शबपवादः।

लुङ् परे रहते धातुसे 'च्लि' होता है।

३८७ च्लेः सिच् ३। १। ४४॥

इचावितौ।

'च्लि' को 'सिच्' होता है 'इ' और 'च्' की इत्संज्ञा और लोप होता है।

३८८ गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २। ४। ७७॥

एभ्यः सिचो लुक् स्यात्।

गा-स्था-घु-संज्ञक पा और भू धातुसे परे होनेपर 'सिच्' का लुक् होता है।

३८९ भूसुवोस्तिङि ७। ३। ८८॥

भू-सू-एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न।

सार्वधातुक 'तिङ्' परे रहते 'भू' और 'सू' को गुण नहीं होता।

लृङ् लकार (क्रियातिपत्तिके अर्थमें)

प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

लृङ्के प्रत्यय 'लङ्' के समान है।

३९० लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३। ३। १३९॥

हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्।

हेतुहेतुमद्भावादि जो लिङ्के निमित्त उन अर्थोंमें भविष्यत्कालिक क्रियावाची धातुसे लृङ् लकार होता है यदि क्रियाकी असिद्धि गम्यमान हो।

गम् (जाना) लट्

प्र० पु०	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
म० पु०	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उ० पु०	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

लिट्

प्र० पु०	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः
म० पु०	जगमिथ (जगन्थ)	जग्मथुः	जग्म
उ० पु०	जगाम (जगम)	जग्मिव	जग्मिम

लुट्

प्र० पु०	गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः
म० पु०	गन्तासि	गन्तास्थः	गन्तास्थ
उ० पु०	गन्तास्मि	गन्तास्वः	गन्तास्मः

लृट्

प्र० पु०	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
म० पु०	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उ० पु०	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
म० पु०	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
उ० पु०	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

लङ्

प्र० पु०	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
म० पु०	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
उ० पु०	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
म० पु०	गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत

उ० पु०	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः
म० पु०	गम्याः	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उ० पु०	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
म० पु०	अगमः	अगमतम्	अगमत
उ० पु०	अगमम्	अगमाव	अगमाम

लृङ्

प्र० पु०	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
म० पु०	अगमिष्यः	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उ० पु०	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

यथा—

गच्छति–न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति। (६। ४०)

गन्तासि- यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥ (२। ५२)

गच्छन्ति–जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्। (२। ५१)

भ्वादिगणकी कुछ प्रसिद्ध धातुएँ

जि (जीतना) लट्–जयति, **लिट्**- जिगाय जिग्यतुः जिग्युः
जिगयिथ जिग्यथुः जिगाय
जिगाय जिग्यिव जिग्यिम

लुट्–जेता, **लृट्**–जेष्यति, **लोट्**–जयतु, **लङ्**–अजयत्, **विधिलिङ्**–जयेत्, **आशीर्लिङ्**–जीयात्, **लुङ्**–अजैषीत्, **लृङ्**–अजेष्यत्।

दृश् (देखना) लट्–पश्यति, **लिट्**–ददर्श ददृशतुः ददृशुः
ददर्शिथ ददृशथुः ददृश
ददर्श ददृशिव ददृशिम

लुट्-द्रष्टा, **लृट्**-द्रक्ष्यति, **लोट्**-पश्यतु, **लङ्**-अपश्यत्, **विधिलिङ्**-पश्येत्, **आशीर्लिङ्**-दृश्यात्, **लुङ्**-अद्राक्षीत्, **लृङ्**-अद्रक्ष्यत्।

नी (ले जाना) लट्-नयति, **लिट्**-निनाय निन्यतुः निन्युः
निनयिथ निन्यथुः निन्य
निनाय निन्यिव निन्यिम

लुट्-नेता, **लृट्**-नेष्यति, **लोट्**-नयतु, **लङ्**-अनयत्, **विधिलिङ्**-नयेत्, **आशीर्लिङ्**-नीयात्, **लुङ्**-अनैषीत्, **लृङ्**-अनेष्यत्।

स्मृ (स्मरण करना) **लट्**-स्मरति, **लिट्**-सस्मार सस्मरतुः सस्मरुः
सस्मरिथ सस्मरथुः सस्मर
सस्मार सस्मरिव सस्मरिम

लुट्-स्मर्ता, **लृट्**-स्मरिष्यति, **लोट्**-स्मरतु, **लङ्**-अस्मरत्, **विधि०**-स्मरेत्, **आशीर्०**-स्मर्यात्, **लुङ्**-अस्मरत्, **लृङ्**-अस्मरिष्यत्।

यथा—

जयेम- न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः। (२। ६)

पश्यामि-पश्यामि देवांस्तव देव देहे। (११। १५)

नयेत्-आत्मन्येव वशं नयेत्। (६। २६)

स्मरति-यो मां स्मरति नित्यशः। (८। १४)

सोपसर्ग धातुएँ

अधिगच्छति (अधि+गम्) नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति। (१८।४९)

अभिभवति (अभि+भू) धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ।(१।४०)

उत्तिष्ठ (उद्+स्था) तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व। (११।३३)

सम्भवामि (सम्+भू) धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। (४।८)

प्रसीद (प्र+सद्) प्रसीद देवेश जगन्निवास। (११।२५)

अनुशोचन्ति (अनु+शुच्) गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ (२।११)

भ्वादिगणकी कुछ परस्मैपदी धातुएँ

१ शुच् = शोक करना
२ स्था = ठहरना
३ श्रि = आश्रय लेना
४ तृ = तैरना
५ नम् = झुकना
६ त्यज् = छोड़ना
७ हृ = हरण करना
८ दह् = जलाना

आत्मनेपद

सेव् (सेवा करना)

	लट्			लट् लकारके प्रत्यय		
प्र. पु.	सेवते	सेवेते	सेवन्ते	ते	इते	अन्ते
म. पु.	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे	से	इथे	ध्वे
उ. पु.	सेवे	सेवावहे	सेवामहे	ई	वहे	महे

यथा—

उपसेवते-अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते। (१५। ९)

निष्पत्तिः-सेव् अ त इस स्थितिमें—

३९१ टित आत्मनेपदानां टेरे ३। ४। ७९॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्।

'टित्' लकारके आत्मनेपदका 'टि' को 'ए' होता है। सेवते।

३९२ आतो ङितः ७। २। ८१॥

अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात्। सेव् इय् ते सू० ३८१ से 'य्' का लोप तथा गुण करके सेवेते।

३९३ थासः से ३। ४। ८०॥

टितो लस्य थासः से स्यात्।

'टित्' लकारके 'थास्' को 'से' आदेश होता है। सेवसे।

लिट्

सेवाञ्चक्रे	सेवाञ्चक्राते	सेवाञ्चक्रिरे
सेवाञ्चकृषे	सेवाञ्चक्राथे	सेवाञ्चकृढ्वे
सेवाञ्चक्रे	सेवाञ्चकृवहे	सेवाञ्चकृमहे

३९४ आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य १। ३। ६३॥

आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः। आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदम्।

अनुप्रयुज्यमान 'कृञ्' धातुसे आम्प्रकृतिके तुल्य आत्मनेपद होता है। आम्प्रकृति यदि आत्मनेपदी हो तो 'कृञ्' से भी 'आत्मनेपद' होता है।

३९५ लिटस्तझयोरेशिरेच् ३। ४। ८१॥

लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेजेतौ स्तः।

लिट् के 'त' और 'झ' को 'एश्' 'इरेच्' आदेश होता है।

सेव् आम् कृ फिर 'ए' करके सेवाञ्चक्रे। सेवाञ्चक्रिरे।

३९६ इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८। ३। ७८॥

इणन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात्।

इणन्त अङ्गसे परे षीध्वम्, लुङ् और लिट्के 'ध' को 'ढ' होता है। सेवाञ्चकृढ्वे। सेवाम्बभूव, सेवामास—ऐसे दो प्रकारके रूप भी बनते हैं।

लुट्

प्र० पु०	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
म० पु०	सेवितासे	सेवितासाथे	सेविताध्वे
उ० पु०	सेविताहे	सेवितास्वहे	सेवितास्महे

लुट्के प्रत्यय

प्र० पु०	ता	तारौ	तारः
म० पु०	तासे	तासाथे	ताध्वे
उ० पु०	ताहे	तास्वहे	तास्महे

निष्पत्तिः—सेवितास्ध्वे इस स्थितिमें—

३९७ धि च ८। २। २५॥

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः।

धादि प्रत्यय परे होनेपर 'स्' का लोप होता है। सेविताध्वे।

३९८ ह एति ७। ४। ५२॥

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे।

'ए' परे रहते 'तास्' और अस्ति के 'स्' को 'ह्' होता है। सेविताहे।

लृट्

प्र०पु०	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
म०पु०	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
उ०पु०	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

लोट्

प्र०पु०	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
म०पु०	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
उ०पु०	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

लोट् लकारके प्रत्यय

प्र०पु०	ताम्	इताम्	अन्ताम्
म०पु०	स्व	इथाम्	ध्वम्
उ०पु०	ऐ	आवहै	आमहै

३९९ आमेतः ३। ४। ९०॥

लोट एकारस्य 'आम्' स्यात्।

लोट्के एकारको 'आम्' होता है। सेवताम्।

लङ्

प्र० पु०	असेवत	असेवेताम्	असेवन्त
म० पु०	असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
उ० पु०	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

लङ् लकारके प्रत्यय

प्र० पु०	त	इताम्	अन्त
म० पु०	थाः	इथाम्	ध्वम्
उ० पु०	इ	वहि	महि

विधिलिङ्

प्र० पु०	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
म० पु०	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
उ० पु०	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

विधिलिङ्के प्रत्यय

ईत	ईयाताम्	ईरन्
ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
ईय	ईवहि	ईमहि

४०० लिङः सीयुट् ३। ४। १०२॥

लिङात्मनेपदस्य सीयुडागमः।

लिङ्के तिबादिको 'सीयुट्' का आगम होता है। सेवेयाताम्।

४०१ झस्य रन् ३। ४। १०५॥

लिङो झस्य रन् स्यात्।

लिङ्के 'झ' को 'रन्' आदेश होता है। सेवेरन्।

४०२ इटोऽत् ३। ४। १०६॥

लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात्।

लिङादेशीय 'इट्' को 'अत्' होता है। सेवेय। सेवेवहि। सेवेमहि।

आशीर्लिङ्

प्र०पु०	सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्
म०पु०	सेविषीष्ठाः	सविषीयास्थाम्	सेविषीध्वम्
उ०पु०	सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि

लुङ्

प्र०पु०	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
म०पु०	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविढ्वम्
उ०पु०	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

लृङ्

प्र० पु०	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
म० पु०	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
उ० पु०	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

भ्वादिगणकी कुछ आत्मनेपदी धातुएँ

लभ् (पाना)

लट्-लभते, **लिट्**-लेभे, लेभाते, लेभिरे। **लुट्**-लब्धा, **लृट्**-लप्स्यते, **लोट्**-लभताम्, **लङ्**-अलभत, **विधि०**-लभेत, **आशीर्लिङ्**-लप्सीष्ट, **लुङ्**-अलभिष्ट, **लृङ्**-अलप्स्यत।

मुद् (प्रसन्न होना)

लट्-मोदते, **लिट्**-मुमुदे, मुमुदाते, मुमुदिरे। **लुट्**-मोदिता, **लृट्**-मोदिष्यते, **लोट्**-मोदताम्, **लङ्**-अमोदत, **विधि०**-मोदेत, **आ.लि.**-मोदिषीष्ट, **लुङ्**-अमोदिष्ट, **लृङ्**-अमोदिष्यत।

यथा—

लभते—श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्। (४। ३९)

लभस्व—तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व। (११। ३३)

लभे—दिशो न जाने न लभे च शर्म। (११। २५)

लभन्ते—सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। (२। ३२)

मोदिष्ये—यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः। (१६। १५)

अदादिगण

अद् (खाना)

लट्लकार

प्र०पु०	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
म०पु०	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उ०पु०	अद्मि	अद्वः	अद्मः

लिट्

प्र०पु० आद आदतुः आदुः जघास जक्षतुः जक्षुः

म०पु० आदिथ आदथुः आद जघसिथ जक्षथुः जक्ष
उ०पु० आद आदिव आदिम जघास जक्षिव जक्षिम

निष्पत्तिः—अद्-शप्-ति इस स्थितिमें।

४०३ अदिप्रभृतिभ्यः शपः २। ४। ७२॥

लुक् स्यात्।

अदादिगणकी धातुओंसे परे 'शप्' का लुक् होता है। अत्ति।

अद् लिट् इस स्थितिमें—

४०४ लिट्यन्यतरस्याम् २। ४। ४०॥

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि।

लिट् परे होनेपर 'अद्' को 'घस्लृ' (घस्) आदेश होता है विकल्पसे। 'अद्' को 'घस्' आदेश, द्वित्व 'घ' को 'ज' करके जघास।

जघस् अतुस् इस स्थितिमें।

४०५ शासिवसिघसीनां च ८। ३। ६०॥

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात्।

इण्कवर्गसे परे शास्, वस् और घस् के 'स्' को 'ष्' होता है।

४०६ गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ६। ४। ९८॥

एषामुपधाया लोपः स्यादजादौ क्ङित्यनङि।

गमादियोंकी उपधाका लोप होता है 'क्ङित्' परे होनेपर, अङ् परे न हो तो।

'स्' को 'ष्' और 'घ्' को 'क्' करके जक्षतुः।

लुट्-अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
लृट्-अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति
लोट्-अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु
लङ्-आदत्	आत्ताम्	आदन्

'अद्' धातुके उदाहरण गीतामें उपलब्ध नहीं होते।

निष्पत्तिः—

४०७ अदः सर्वेषाम् ७। ५। १००

अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्य 'अट्' सर्वमतेन।

'अद्' से परे अपृक्त सार्वधातुकको 'अट्' का आगम होता है, सबके मतमें। आदत्।

४०८ लुङ्सनोर्घस्लृ २। ४। ३७॥

अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च।

'लुङ्' तथा 'सन्' परे होनेपर 'अद्' को 'घस्लृ' आदेश होता है। अघसत्।

४०९ इडत्त्यर्त्तिव्ययतीनाम् ७। २। ६६

अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात्।

अद्, ऋ तथा व्येञ् धातुओंसे परे थल्को नित्य इट् होता है।

४१० हुझल्भ्यो हेर्धिः ६। ४। १०१॥

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्।

'हु' और झलन्त धातुओंसे परे 'हि' को 'धि' होता है। अद्धि।

'हन्' (हिंसागत्योः)

	लट्			लिट्	
हन्ति	हतः	घ्नन्ति	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
हन्सि	हथः	हथ	जघनिथ / जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
हन्मि	हन्वः	हन्मः	जघान / जघन	जघ्निव	जघ्निम

	लोट्			लङ्	
हन्तु	हताम्	घ्नन्तु	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
जहि	हतम्	हत	अहन्	अहतम्	अहत
हनानि	हनाव	हनाम	अहनम्	अहन्व	अहन्म

विधि०-हन्यात् हन्याताम् हन्युः। **आशीर्०**-वध्यात् वध्यास्ताम् वध्यासुः।

लुङ्-अवधीत् अवधिष्टाम् अवधिषुः। **लृङ्**-अहनिष्यत् अहनिष्यताम् अहनिष्यन्।

यथा—

हन्ति-नायं हन्ति न हन्यते। (२। १९) **जहि**-जहि शत्रुं महाबाहो। (३। ४३) **हन्युः**-धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्। (१। ४६)

४११ अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६। ४। ३७

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपःस्याज्झलादौ किति ङिति परे।

अनुदात्तोपदेश, अनुनासिकान्त धातु तथा वनति एवं तनादिगणकी धातुके अनुनासिकका लोप होता है, कित् ङित् परे रहते। हतः।

४१२ अभ्यासाच्च ७। ३। ५५

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात्।

अभ्याससे परे 'हन्' धातुके 'ह' को 'कुत्व' होता है।

४१३ हन्तेर्जः ६। ४। ३६॥

हौ परे।

'हन्' धातुके 'ह्' के स्थानपर 'ज्' होता है, 'हि' परे रहते। जहि।

४१४ हनो वध लिङि २। ४। ४२॥

हनो वधादेशः स्याल्लिङि। वध्यात्।

हन् धातुको वध आदेश होता है, लिङ् लकारमें।

४१५ लुङि च २। ४। ४३॥

हनो वधादेशः स्याल्लुङि।

हन् धातुको वध आदेश होता है, लुङ्लकारमें भी। अवधीत्।

अस् (होना)

	लट्			लोट्	
अस्ति	स्तः	सन्ति	अस्तु	स्ताम्	सन्तु

असि	स्थः	स्थ	एधि	स्तम्	स्त
अस्मि	स्वः	स्मः	असानि	असाव	असाम

लङ् विधि लिङ्

आसीत्	आस्ताम्	आसन्	स्यात्	स्याताम्	स्युः
आसीः	आस्तम्	आस्त	स्याः	स्यातम्	स्यात
आसम्	आस्व	आस्म	स्याम्	स्याव	स्याम

यथा—

अस्ति-नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य। (२। ६६)

असि-भक्तोऽसि मे सखा चेति। (४। ३)

अस्मि-प्रभास्मि शशिसूर्ययोः। (७। ८)

आसम्-न त्वेवाहं जातु नासम्। (२। १२)

स्याम-स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव। (१। ३७)

स्याम्-संकरस्य च कर्ता स्याम्। (३। २४)

स्युः-येऽपि स्युः पापयोनयः। (९। ३२)

निष्पत्ति—

४१६ श्नसोरल्लोपः ६। ४। १११॥

श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति।

सार्वधातुक 'कित्' 'ङित्' परे होनेपर 'श्न' और 'अस्' के 'अ' का लोप होता है। स्तः (यहाँ 'अ' का लोप हुआ है)।

४१७ अस्तेर्भूः २। ४। ५२॥

अस्तेर्भू इत्यादेशः स्यादार्धधातुके।

आर्धधातुक परे होनेपर 'अस्' को 'भू' आदेश होता है।

बभूव। भविता। भविष्यति।

४१८ घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६। ४। ११९॥

घोरस्तेश्च एत्वं स्याद्धौ परे अभ्यासलोपश्च।

'हि' परे रहते 'घुसंज्ञक' तथा 'अस्' को एत्त्व तथा अभ्यासका लोप होता है। एधि।

या (जाना)

लट्-याति, **लिट्**-ययौ, **लुट्**-याता, **लृट्**-यास्यति, **लोट्**-यातु,

लङ्-अयात्, **विधि०**-यायात्, **लुङ्**-अयासीत्, **लृङ्**-अयास्यत्।
यथा—
याति-अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्। (६। ४५)
यास्यसि-यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव। (४। ३५)
उपयान्ति-(सोपसर्ग) ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। (१०। १०)

इण् (गतौ)

लट्-एति इतः यन्ति। **लिट्**-इयाय ईयतुः ईयुः। **लुट्**-एता। **लृट्**-एष्यति। **लोट्**-एतु इताम्, यन्तु। **लङ्**-ऐत् ऐताम् आयन्। **विधि०**-इयात्। **आशीर्०**-ईयात। **लुङ्**-अगात् अगाताम् अगुः।
यथा—
एति-त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन। (४। ९)
एष्यति-भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः। (१८। ६८)
उपैष्यसि-(सोपसर्ग) संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि। (९। २८)

विद् (ज्ञाने)

लट्-वेत्ति वित्तः विदन्ति, **पक्षे**-वेद विदतुः विदुः।
लिट्-विवेद। **लुट्**-वेदिता। **लृट्**-वेदिष्यति। **लोट्**-विदाङ्करोतु।
लङ्-अवेत्। **विधि०**-विद्यात्। **लुङ्**-अवेदीत्। **लृङ्**-अवेदीष्यत्।
यथा—
विद्धि-क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। (१३। २)
विद्मः-न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयः। (२। ६)
विद्याम्-कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्। (१०। १७)
आख्या (कहना) **आख्याहि**-आख्याहि मे को भवानुग्ररूपः। (११। ३१)
स्तु (स्तुति करना) **स्तुवन्ति**-स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः। (११। २१)

शास् (शासन करना) शाधि-शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। (२। ७)

द्विष् (द्वेष करना) द्वेष्टि-नाभिनन्दति न द्वेष्टितस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। (२। ५७)

जागृ (जागना) जागर्ति-या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। जाग्रति-यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः (२। ६९)

ब्रू (बोलना) उभयपदी

लट्		लट्
ब्रवीति ब्रूतः ब्रुवन्ति		आह आहतुः आहुः
ब्रवीषि ब्रूथः ब्रूथ	पक्षे	आत्थ आहथुः ×
ब्रवीमि ब्रूवः ब्रूमः		× × ×

लिट्-उवाच ऊचतुः ऊचुः लोट्-ब्रवीतु ब्रूताम् ब्रुवन्तु

लुट्-वक्ता। लृट्-वक्ष्यति। लङ्-अब्रवीत् अब्रूताम् अब्रुवन्।

विधि०-ब्रूयात्। आशीर्-उच्यात्। लुङ्-अवोचत्। लृङ्-अवक्ष्यत्।

यथा—

उवाच-उवाच पार्थ पश्यैतान्। (१। २५) उवाच मधुसूदनः। (२। १) तमुवाच हृषीकेशः। (२। १०)

ब्रवीषि-स्वयं चैव ब्रवीषि मे। (१०। १३)

ब्रूहि-यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे। (२। ७)

ब्रवीमि-नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते। (१। ७)

अब्रवीत्-विषीदन्निदमब्रवीत्। (१। २८)

,, -मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्। (४। १)

आह-नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णम्। (११। ३५)

,, -हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते। (१। २१)

प्राह (सोपसर्ग) विवस्वान्मनवे प्राह। (४। १)

प्राहुः (,,) यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव। (६। २)

आहुः-अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। (८। २१)

प्रवक्ष्यामि-परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् (१४। १)

निष्पत्तिः—

४१९ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३। ४। ८४॥

ब्रुवोलटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः। 'ब्रू' धातुसे परे लट्-सम्बन्धी तिबादि पाँचको णलादि पाँच आदेश विकल्पसे होते हैं और 'ब्रु' धातुको 'आह' आदेश होता है। आह, आहतुः, आहुः।

४२० आहस्थः ८। २। ३५॥

झलि परे।

'झल्' परे रहते 'आह' के 'ह' को 'थ' आदेश होता है। आत्थ।

४२१ ब्रुवो वचिः २। ४। ५३॥

आर्धधातुके।

आर्धधातुकमें 'ब्रू' को 'वच्' आदेश होता है। उवाच।

४२२ अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३। १। ५२॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्।

अस्, वच् और ख्या धातुसे परे 'च्लि' को 'अङ्' आदेश होता है।

४२३ वच उम् ७। ४। २०॥

अङि परे।

'अङ्' परे होनेपर 'वच्' को 'उम्' का आगम होता है। अवोचत्।

'आस्' (बैठना)

आस्ते-सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी। (५। १३)

उपासते-(सोपसर्ग) नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते। (९। १४)

पर्युपासते-(सोपसर्ग) एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते। (१२। १)

चक्ष्-(व्यक्त वाणीमें और देखनेमें भी) चक्षे चक्षाते चक्षते।

परिचक्षते-श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते। (१७। १३)

जुहोत्यादिगण

हु (हवन करना)

लट्		लिट्
जुहोति जुहुतः जुह्वति	१-जुहाव	जुहुवतुः जुहुवुः
		पक्षे
जुहोषि जुहुथः जुहुथ	२-जुहवाञ्चकार,	जुहवाञ्चक्रतुः, जुहवाञ्चक्रुः
		पक्षे
जुहोमि जुहुवः जुहुमः	३-बभूव, आस	

लुट्-होता। **लृट्**-होष्यति। **लोट्**-जुहोतु। **लङ्**-अजुहोत्।
विधि०-जुहुयात्। **आशीर्**-हूयात्। **लुङ्**-अहौषीत्। **लृङ्**-अहोष्यत्।

यथा—

जुहोषि- यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
(९। २७)

जुह्वति-श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति। (४। २६)

उपजुह्वति-(सोपसर्ग) ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।
(४। २५)

निष्पत्तिः—

४२४ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २। ४। ७५॥

शपः श्लुः स्यात्।

जुहोत्यादिगणकी धातुओंसे परे 'शप्' को 'श्लु' होता है।

४२५ श्लौ ६। १। १०॥

धातोर्द्वे स्तः।

'श्लु' होनेपर धातु को 'द्वित्व' होता है। जुहोति। जुहुतः।

४२६ अदभ्यस्तात् ७। १। ४॥

झस्यात् स्यात्।

अभ्याससे परे 'झ' को 'अत्' होता है। 'उवङ्' प्राप्त होनेपर।

४२७ हुश्नुवोः सार्वधातुके ६। ४। ८७॥

जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य चासंयोगपूर्वोवर्णस्य यण् स्यादजादौ सार्वधातुके।

'हु' धातु तथा 'श्नु' प्रत्ययान्त अनेक अच्वाले अङ्गके संयोग-भिन्न पूर्व उवर्णको 'यण्' होता है, अजादि सार्वधातुक परे होनेपर। जुह्वति।

४२८ भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३। १। ३९॥

एभ्यो लिटि आम्वा स्यादामि श्लाविव कार्यं च।

लिट् परे होनेपर भी-ह्री-भृ और हु धातुको 'आम्' विकल्पसे होता है और आम् परे होनेपर 'श्लु' की तरह (द्वित्वादि) कार्य होते हैं, अतः दो तरहके रूप बनते हैं। जुहवाञ्चकार (बभूव, आस) वा जुहाव।

धा (धारण करना) उभयपदी

	परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्-	दधाति	धत्तः	दधति	लट्-	धत्ते	दधाते	दधते
	दधासि	धत्थः	धत्थ		धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
	दधामि	दध्वः	दध्मः		दधे	दध्वहे	दध्महे
लिट्-	दधौ	दधतुः	दधुः	**लिट्**-	दधे	दधाते	दधिरे

लुट्- धाता, **लृट्**-धास्यति, **लुट्**-धाता, **लृट्**-धास्यते,
लोट्-दधातु, **लङ्**-अदधात्, **लोट्**-धत्ताम्, **लङ्**-अधत्त,
विधि०-दध्यात्, **आशीर्**-धेयात्, **विधि०**-दधीत, **आशीर्**-धासीष्ट,

लुङ्-अधात्, लृङ्-अधास्यत् लुङ्-अधित, लृङ्-अधास्यत

यथा—

दधामि-मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। (१४। ३)

अभिधास्यति (सोपसर्ग)—य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
(१८।६८)

आधत्स्व-मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। (१२। ८)

विदधामि-यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥ (७। २१)

हा (त्यागे)

जहाति-बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। (२। ५०)

प्रजहाति-(सोपसर्ग)-प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
(२। ५५)

प्रहास्यसि-बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि। (२। ३९)

भृ (भरणे)

बिभर्ति-यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः। (१५। १७)

दा (दाने)

परस्मैपद			आत्मनेपद		
लट्- ददाति	दत्तः	ददति	लट्-दत्ते	ददाते	ददते
ददासि	दत्थः	दत्थ	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
ददामि	दद्वः	दद्मः	ददे	दद्वहे	दद्महे
लिट्-ददौ	ददतुः	ददुः	लिट्-ददे	ददाते	ददिरे
लुट्- दाता,	लृट्-दास्यति		लुट्-दाता,	लृट्-दास्यते	
लोट्-ददातु,	लङ्-अददात्		लोट्-दत्ताम्,	लङ्-अदत्त	
विधि०-दद्यात्,	लुङ्-अदात्		विधि०-ददीत,	आशीर्०-दासीष्ट	
लृङ्-अदास्यत्			लुङ्-अदित,	लृङ्-अदास्यत	

यथा—

ददामि-ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते (१०। १०)

ददासि-यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (९। २७)

दास्यामि-यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः। (१६। १५)

दास्यन्ते-इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। (३। १२)

आदत्ते-नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः। (५। १५)

निष्पत्तिः—

४२९ श्नाभ्यस्तयोरातः ६। ४। ११२॥

अनयोरातो लोपः स्यात् क्ङिति सार्वधातुके।

'श्ना' और अभ्यस्त धातुके 'आ' का लोप होता है, क्ङित् सार्वधातुक परे होनेपर। 'आ' का लोप करके दत्तः।

४३० आत औ णलः ७। १। ३४॥

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात्।

आदन्त धातुसे 'णल्' को औकारादेश होता है।

४३१ दाधा घ्वदाप् १। १। २०॥

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाप्दैपौ विना।

'दाप्' दैप्' धातुके बिना दा तथा धा रूप धातुकी 'घु' संज्ञा होती है। 'घु' संज्ञक होनेसे 'दा' को 'ए' तथा 'सि' को 'हि' होकर 'देहि' रूप बनता है।

४३२ स्थाघ्वोरिच्च १। २। १७॥

अनयोरिदन्तादेशः सिच्च कित् स्यादात्मनेपदे।

'स्था' तथा 'घु' संज्ञक धातुको इकार अन्तादेश होता है, आत्मनेपदमें। अदित।

दिवादिगण

४३३ दिवादिभ्यः श्यन् ३। १। ६९॥

शपोऽपवादः।

दिवादिगणकी धातुओंसे परे 'श्यन्' विकरण होता है, कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे हो तो।

दिव् (चमकना, जुआ खेलना)

लट्-दीव्यति दीव्यतः दीव्यन्ति, **लङ्**-अदीव्यत् अदीव्यताम् अदीव्यन्
लिट्-दिदेव दिदिवतुः दिदिवुः, **विधि०**-दीव्येत् दीव्येताम् दीव्येयुः
लुट्-देविता देवितारौ देवितारः, **आशीर्**-दीव्यात् दीव्यास्ताम् दीव्यासुः
लृट्-देविष्यति देविष्यतः देविष्यन्ति, **लुङ्**-अदेवीत् अदेविष्टाम् अदेविषुः
लोट्-दीव्यतु दीव्यताम् दीव्यन्तु, **लृङ्**-अदेविष्यत् अदेविष्यताम् अदेविष्यन्।

यथा—

तुष्-तुष्यति-यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति (६। २०)
तुष्यन्ति-कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च। (१०। ९)
नश्-प्रणश्यति (सोपसर्ग)-कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। (९। ३१)
प्रनश्-प्रणश्यन्ति-कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः। (१। ४०)
विनश्-विनङ्क्ष्यसि-अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि। (१८। ५८)
परिशुष्-परिशुष्यति-सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति। (१। २९)
प्रदुष्-प्रदुष्यन्ति-अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः। (१। ४१)
प्रसिध्-प्रसिध्येत्-शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः। (३। ८)
प्रहृष्-प्रहृष्यति-स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च। (११। ३६)
मुह्-मुह्यति—नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन। (८। २७)
युध्-प्रतियोत्स्यामि-(सोपसर्ग) कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन। इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥ (२। ४)
शुच्-शुचः-अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। (१८। ६६)

विद् (होना)

लट्-विद्यते विद्येते विद्यन्ते,**लङ्**-अविद्यत अविद्येताम् अविद्यन्त
लिट्-विविदे विविदाते विविदिरे, **विधि०**-विद्येत विद्येयाताम् विद्येरन्
लुट्-वेत्ता वेतारौ वेत्तारः, **आशीर्**-वित्सीष्ट वित्सीयास्ताम् वित्सीरन्
लृट्-वेत्स्यते वेत्स्येते वेत्स्यन्ते, **लुङ्**-अवित्त अवित्साताम् अवित्सत
लोट्-विद्यताम् विद्येताम् विद्यन्ताम्, **लृङ्**-अवेत्स्यत अवेत्स्येताम् अवेत्स्यन्त

यथा—

विद्यते-मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते। (८। १६) **जन्-जायते**-न जायते म्रियते वा कदाचित्। (२। २०)

जायन्ते-(१४। १२)। **अभि+जन्=अभिजायते** (२। ६२)। **उप+जन्=उपजायते** (१४। ११)। **सम्+जन्=संजायते**। (२। ६२)। **पद्**-(सोपसर्ग) **उप+पद्=उपपद्यते**—क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। (२। ३) **प्रति+पद्=प्रतिपद्यते** (१४। १४) **प्र+पद्=प्रपद्यते** (७। १९), **प्रपद्यन्ते** (७। १४, १५), **प्रपद्ये** (१५। ४), **सम्+पद्=संपद्यते** (१३। ३०)।

मन्-मन्यते-अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। (३। २७), **मन्यसे** (२। २६), **मन्ये** (६। ३४), **मन्येत** (५। ८), **मंस्यन्ते** (२। ३५)।

सू (पैदा करना) **सूयते**-मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। (९। १०) **प्र+सू=प्रसविष्यध्वम्** (३। १०)।

युज्-जोड़ना-**युज्यस्व**-ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि (२। ३८) **युध्-युध्यस्व**-युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्। (११। ३४)

युध्य (८। ७), **योत्स्ये** (१८। ५९)।

ली (लय होना) **प्र+ली=प्रलीयते**-भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते। (८। १९) **प्र-वि+ली=प्रविलीयते** (४। २३)।

शक्-(समर्थ होना) **शक्यसे**-न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। (११। ८)

स्वादिगण

४३४ स्वादिभ्यः श्नुः ३। १। ७३॥

शपोऽपवादः।

स्वादिगणकी धातुओंसे 'श्नु' प्रत्यय होता है, कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे होनेपर।

लट्—

आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति।
आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ
आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः।

लिट्—

आप	आपतुः	आपुः
आपिथ	आपथुः	आप
आप	आपिव	आपिम
लुट्-आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः
लृट्—आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति
लोट्—आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
लङ्—आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
विधि०—आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः
आशीर्—आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः
लृङ्—आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्

आप्नोति—स शान्तिमाप्नोति न कामकामी। (२। ७०)

आप्नुवन्ति (८। १५)। **सम्+आप्**=समाप्नोषि-सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः। (११। ४०) **अव्+आप्**=अवाप्नोति (१५। ८), **अव्+आप्**=अवाप्स्यथ (३। ११)। अवाप्स्यसि-ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि। (२। ३३) आप्नुयाम् (३। २), **प्र+आप्**=प्राप्नुयात् (१८। ७१), **प्र+आप्**=प्राप्नुवन्ति-ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः। (१२। ४) **प्र+आप्**=प्राप्स्ये-इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्। (१६। १३) **प्र+आप्**=प्राप्स्यसि-हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। (२। ३७)।

शक्-शक्नोमि=न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः। (१। ३०)
शक्नोषि=अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥ (१२। ९)
अश्—अश्नुते=जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते। (१४। २०)

तुदादिगण

४३५ तुदादिभ्यः शः ३। १। ७७॥

शपोऽपवादः।

कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे होनेपर तुदादिगणकी धातुओंसे 'श' विकरण लगता है।

इष् (चाहना)

लट्-	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः
लिट्-	इयेष	ईषतुः	ईषुः
	इयेषिथ	ईषथुः	ईष
	इयेष	ईषिव	ईषिम
लुट्-	एषिता	एषितारौ	एषितारः
लृट्-	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
लोट्-	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
लङ्-	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
विधि०-	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
आशीर्-	इष्यात्	इष्यास्ताम्	इष्यासुः
लुङ्-	ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः
लृङ्-	ऐषिष्यत्	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्

इच्छामि-एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन। (१। ३५)
इच्छ-अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय। (१२। ९)
अन्विच्छ (सोपसर्ग)-बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः। (२। ४९)

अप+नुद्=दूर करना-**अपनुद्यात्**-न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्। (२।८)
सृज्=रचना=**सृजति**-न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। (५।१४)
उद्+सृज्=पैदा करना-उत्सृजामि-तपाम्यहमहं वर्षं
निगृह्णाम्युत्सृजामि च। (९।१९)
वि+सृज्=छोड़ना-सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्। (९।७)
उप+दिश्=उपदेश देना—उपदेक्ष्यन्ति-उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं
ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः। (४।३४)
उप-आ+विश्=बैठना-**उपाविशत्**-एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ
उपाविशत्। (१।४७)
क्षिप्=फेंकना-**क्षिपामि**-क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।
(१६।१९)
प्रच्छ्=पूछना-पृच्छामि-पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः। (२।७)
लिम्पन्ति-न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। (४।१४)
विन्द्-पाना-**विन्दामि**-धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो। (११।२४)
विन्दति (४।३८), विन्दते (५।४)।
वि+मुच्=छोड़ना-**विमुञ्चति**-यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च। न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥ (१८।३५)
मृ=मरना-**म्रियते**-न जायते म्रियते वा कदाचित् (२।२०)

४३६ म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १।३।६१॥

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र।

लुङ्, लिङ् और शित्के प्रकृतिभूत मृङ्से तङ् (आत्मनेपद) होता है, अन्यत्र परस्मैपद होता हैं। म्रियते। ममार। मर्तासि। मरिष्यति। मृषीष्ट, अमृत।

रुधादिगण

४३७ रुधादिभ्यः श्नम् ३।१।७८

शपोऽपवादः।

कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे होनेपर रुधादिगणकी धातुओंसे 'श्नम्' विकरण लगता है।

छिद् (काटना)

लट्-	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति
	छिनत्सि	छिन्थः	छिन्थ
	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः
लिट्-	चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः
	चिच्छेदिथ	चिच्छिदथुः	चिच्छिद
	चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम
लुट्-	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः
लृट्-	छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति
लोट्-	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
लङ्-	अच्छिनत्	अछिन्ताम्	अच्छिन्दन्
आशीर्-	छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासुः
लुङ्-	अच्छिदत्	अच्छिदताम्	अच्छिदन्
लृङ्-	अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्यताम्	अच्छेत्स्यन्

यथा—

छिन्दन्ति- नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। (२। २३)

युज्=जोड़ना **युञ्जीत**-योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः। (६। १०)

युञ्ज्यात्-उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये। (६। १२)

नि+युज्=तिप्-**नियोक्ष्यति**-मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति। (१८। ५९)

हिंस्-मारना **हिनस्ति**—न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्। (१३। २८)

भुज्—खाना **भुञ्जते**-भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्। (३। १३)

भुङ्क्ते-तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः। (३। १२)

भुङ्क्ष्व-तस्मात्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्। (११। ३३)
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्। (२। ५)

भोक्ष्यसे-हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। (२। ३७)

तनादिगण

४३८ तनादिकृञ्भ्य उः ३। १। ७९॥

तनादेः कृञश्च उः प्रत्ययः स्यात्।

तनादिगणकी धातुओं तथा 'कृञ्' से 'उ' प्रत्यय होता है।

कृ (करना)

परस्मैपद

लट्-	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
	करोमि	कुर्वः	कुर्मः
लिट्-	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
	चकार	चकृव	चकृम
लुट्	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः
लृट्-	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
लोट्-	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
लङ्	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
विधि०-	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
आशीर्०	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
लुङ्-	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
लृङ्-	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्

आत्मनेपद

लट्-	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते

	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे
लिट्-	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे
लुट्	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः
लृट्-	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
लोट्-	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
लङ्-	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
विधि०-	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
आशीर्०-	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
लुङ्-	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
लृङ्-	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त

यथा—

करोति- ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ (५। १०)

करोषि- यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। (९। २७)

करोमि- नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्। (५। ८)

कुरुते- यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥ (४। ३७)

कुरु- नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। (३। ८)

कुरुष्व- यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्। (९। २७)

करिष्यति- प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति। (३। ३३)

करिष्ये- नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥ (१८। ७३)

कुर्वन्ति- (३। २५)। करिष्यसि (२। ३३)। अकुर्वत (१। १)।
कुर्यात् (३। २५)। कुर्याम् (३। २४)।

क्र्यादिगण

४३९ क्र्यादिभ्यः श्ना ३। १। ८१॥

शपोऽपवादः।

कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे होनेपर क्र्यादिगणकी धातुओंसे 'श्ना' विकरण लगता है।

ज्ञा (जानना)

लट्-	जानाति	जानीतः	जानन्ति
	जानासि	जानीथः	जानीथ
	जानामि	जानीवः	जानीमः
लिट्-	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
	जज्ञिथ	जज्ञथुः	जज्ञ
	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम
लुट्-	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातारः
लृट्-	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति
लोट्-	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
लङ्-	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
विधि०-	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
आशीर्०-	ज्ञायात्	ज्ञायास्ताम्	ज्ञायासुः
लुङ्-	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
लृङ्-	अज्ञास्यत्	अज्ञास्यताम्	अज्ञास्यन्

यथा—

जानाति- यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥ (१५। १९)

अभिजानाति-(सोपसर्ग) न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते। (४। १४)

अवजानन्ति-अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। (९। ११)

प्र–ज्ञा=प्रजानाति (१८। ३१)

प्र–ज्ञा=प्रजानामि (११। ३१)

विजानीतः-उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते। (२। १९)
अश्=खाना-अश्नन्ति-अश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥ (९। २०)
अश्नासि (९। २७)। अश्नामि (९। २६)।
ग्रह-लेना-**गृह्णाति**-वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। (२। २२)
(सोपसर्ग) **निगृह्णामि**-तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च। (९। १९)
नि-बन्ध्-निबध्नन्ति-न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय। (९। ९)

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥ (१४। ७)

पुष्-पुष्णामि-पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः। (१५। १३)
गृ-गृणन्ति-केचिद् भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति। (११। २१)

चुरादिगण

४४० **सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३। १। २५॥**

चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे।

सत्यादि तथा चुरादिगणकी धातुओंसे 'णिच्' विकरण लगता है। 'णिच्को 'अय्' हो जाता है।

कथ् (कहना)

परस्मैपद

लट्—	कथयति	कथयतः	कथयन्ति
लिट्—	कथयामास	कथयामासतुः	कथयामासुः
लुट्—	कथयिता	कथयितारौ	कथयितारः
लृट्—	कथयिष्यति	कथयिष्यतः	कथयिष्यन्ति
लोट्—	कथयतु	कथयताम्	कथयन्तु

लङ्—	अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्
विधि०—	कथयेत्	कथयेताम्	कथयेयुः
आशीर्०—	कथ्यात्	कथ्यास्ताम्	कथ्यासुः
लुङ्—	अचकथत्	अचकथताम्	अचकथन्
लृङ्—	अकथयिष्यत्	अकथयिष्यताम्	अकथयिष्यन्

आत्मनेपद

लट्—	कथयते	कथयेते	कथयन्ते
लिट्—	कथयाञ्चक्रे	कथयाञ्चक्राते	कथयाञ्चक्रिरे
लुट्—	कथयिता	कथयितारौ	कथयितारः
लृट्—	कथयिष्यते	कथयिष्येते	कथयिष्यन्ते
लोट्—	कथयताम्	कथयेताम्	कथयन्ताम्
लङ्—	अकथयत	अकथयेताम्	अकथयन्त
विधि०—	कथयेत	कथंयेयाताम्	कथयेरन्
आशीर्०—	कथयिषीष्टं	कथयिषीयास्ताम्	कथयिषीरन्
लुङ्—	अचकथत	अचकथेताम्	अचकथन्त
लृङ्—	अकथयिष्यत	अकथयिष्येताम्	अकथयिष्यन्त

यथा—

कथयिष्यन्ति—अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिष्यते॥ (२। ३४)

कथयिष्यामि-हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः। (१०। १९)

कथय-भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्। (१०। १८)

चिन्तयेत्-आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्। (६। २५)

प्र-अर्थ्—त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं
प्रार्थयन्ते। (९। २०)

प्रक्रियाप्रकरणम्

ण्यन्तप्रक्रिया

४४१ तत्प्रयोजको हेतुश्च १। ४। ५५॥

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्।

कर्त्ताका जो प्रयोजक उसकी हेतुसंज्ञा और कर्तृसंज्ञा होती है।

४४२ हेतुमति च ३। १। २६

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्।

प्रयोजकके व्यापार, प्रेरणा, अन्वेषण और अध्येषणा आदिके वाच्य होनेपर धातुसे 'णिच्' प्रत्यय होता है।

प्रेरणाके अर्थमें जो कर्ता स्वयं न करके दूसरेको प्रेरणा करता है, उसे 'प्रेरक कर्ता' कहते हैं। णिजन्त धातुओंके रूप चुरादिगणकी धातुओंके समान चलते हैं।

यथा—

नश्-णिच्-**नाशयामि**-तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ (१०। ११)

यहाँ उपधाके ह्रस्व स्वरको दीर्घ हो जाता है।

नि-विश्-णिच्-निवेशय-मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। (१२। ८)

वि मुह्-णिच्-**विमोहयति**-एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्। (३। ४०)

क्लिद्-णिच्—**क्लेदयन्ति**-न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। (२। २३)

नि-युज्—**णिच्-नियोजयसि**-तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव। (३। १)

वि—दृ—णिच्-**व्यदारयत्**-स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्। (१। १९)

जुष्-णिच्-**जोषयेत्**—जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्। (३। २६)

शुष्-णिच्-**शोषयति**-न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। (२। २३)

उप-धृ-णिच्-**उपधारय**-एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय। (७। ६)

दृश्-णिच्-**दर्शय**-योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्। (११। ४)

दृश्-णिच्-**दर्शयामास**-दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥ (११।९)
धृञ्-णिच्-**धारयामि**-गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा। (१५।१३)
मुच्-णिच्-**मोक्षयिष्यामि**-अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। (१८।६६)
वि-चल्-णिच्-**विचालयेत्**-तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्न विचालयेत्। (३।२९)
अव-सद्-णिच्-**अवसादयेत्**-उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। (६।५)
क्षम्-णिच्-**क्षामये**-तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्। (११।४२)
आ-श्वस्-णिच्-**आश्वासयामास**-आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा। (११।५०)

आकारान्त धातुओंसे 'णिच्' प्रत्यय होनेपर धातुके आगे 'पुक्' का आगम होता है। यथा—

स्था-णिच्-**स्थापय**-सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत। (१।२१)
हन्- णिच्-**घातयति**-वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥ (२।२१)
प्र-काश्-णिच्-**प्रकाशयति**-तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्। (५।१६)
भू-णिच्-**भावयत**-देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। (३।११)
भास्-णिच्=**भासयते** (१५।६)। व्यथ्-णिच्=**व्यथयन्ति** (२।१५)
जन्-णिच्=**जनयेत्** (३।२६)। प्र-सद्-णिच्=**प्रसादये** (११।४४)

प्रेरणार्थक 'भू' णिजन्त

णिजन्त धातुओंके रूप चुरादिगणीय धातुओंकी तरह चलते हैं—
लट्-भावयति, भावयते **लिट्**-भावयाञ्चकार, भावयाञ्चक्रे **लुट्**-भावयिता (दोनोंमें) **लृट्**-भावयिष्यति, भावयिष्यते **लोट्**-भावयतु, भावयताम् **लङ्**-अभावयत्, अभावयत **विधि०**-भावयेत्, भावयेत **आशीर्**-भाव्यात्, भावयिषीष्ट **लुङ्**-अबूभुवत्, अबूभुवत **लृङ्**-अभावयिष्यत् अभावयिष्यत।

सन्नन्तप्रक्रिया

४४३ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७॥

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन्प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम्।

इच्छाके कर्मभूत और इच्छाके साथ एक कर्तावाले व्यापारके वाचक धातुसे 'सन्' प्रत्यय विकल्पसे होता है। इच्छाके अर्थमें अर्थात् किसी कार्यके करनेकी इच्छाका अर्थ बतानेके लिये जिस धातुके आगे 'सन्' प्रत्यय लगता है, उसे सन्नन्त कहते हैं। जिस कार्यके करनेकी इच्छा हो, वह इच्छा करनेकी क्रियाका कर्म होता है। यथा–जीवितुम् इच्छेति=जिजीविषति। 'सन्' प्रत्यय लगनेपर धातु अभ्यस्त हो जाता है, इसलिये उसे द्वित्व हो जाता है। यथा—

जीव्–सन्–**जिजीविषामः**—यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः। (२। ६)

४४४ गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ३। १। ५॥

एभ्यः सन् स्यात्।

गुप्, तिज्, कित् धातुओंसे सन् प्रत्यय होता है।

तिजेः क्षमायाम् (वा)।

क्षमा अर्थमें ही तिज् धातुसे सन् प्रत्यय होता है।

तिज्–सन्–तितिक्षस्व–मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥ (२। १४)

४४५ सन्यङोः ६। १। ९॥

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च धातोरनभ्यासस्य प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य।

सन्नन्त और यङन्त धातुओंके प्रथम एकाच् अवयवको और अजादि धातुओंके द्वितीय एकाच् अवयवको द्वित्व होता है।

सन्नन्त धातुओंके रूप सभी लकारोंमें इस प्रकार चलते हैं—

लट्– जिजीविषति　　**लोट्**–जिजीविषतु
लिट्–जिजीविषाञ्चकार　　**लङ्**– अजिजीविषत्

जिजीविषाम्बभूव	**विधि०**-जिजीविषेत्
जिजीविषामास	**आशीर्०**-जिजीविषिष्यात्
लुट्-जिजीविषिता	**लुङ्**-अजिजीविषीत्
लृट्-जिजीविषिष्यति	**लृङ्**-अजिजीविषिष्यत्।

नामधातुप्रक्रिया

४४६ सुप आत्मनः क्यच् ३। १। ८॥

इषिकर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे 'क्यच्' प्रत्ययो वा स्यात्।

इच्छा के कर्मभूत तथा एषितृ-सम्बन्धी सुबन्तसे इच्छा के अर्थमें 'क्यच्' प्रत्यय विकल्पसे होता है। यथा—

अभ्यसूयति-न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति। (१८। ६७)
अभ्यसूतां करोतीति अभ्यसूयति 'क्यच्' प्रत्यय।

तपस्यसि- यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्। (८। २७)
तपः चरसीति तपस्यसि 'क्यच्'।

नमस्यन्ति- सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः। (११। ३६)
नमः कुर्वन्तीति नमस्यन्ति।

हितकाम्यया-भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया। (१०। १)
हितम् इच्छतीति हितकाम्यतिमें 'क्यच्' प्रत्यय।

यङन्तप्रक्रिया

४४७ धातारेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३। १। २२॥

पौनः पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात्।

पौनः पुन्य और भृशार्थके प्रकट होनेपर एक अच्वाली हलादि धातुसे 'यङ्' प्रत्यय होता है।

४४८ गुणो यङ्लुकोः ७। ४। ८२॥

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च।

'यङ्' परे होनेपर और यङ्लुक्के विषयमें अभ्यासको गुण

होता है। यथा—वारं वारं लेक्षीति लेलिह्यसे—

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान् समग्रान् वदनैर्ज्वलद्भिः। (११। ३०)

क्रियाको बार-बार करनेपर अधिकताका बोध करानेके लिये धातुसे यङ् प्रत्यय होता है। यह केवल हल् वर्णसे आरम्भ होनेवाली और एक अच्वाली धातुसे ही होता है।

यङन्त धातुके रूप इस प्रकार चलते हैं—

लट्- बोभूयते	**लङ्**-अबोभूयत
लिट्-बोभूयाञ्चक्रे	**विधि०**-बोभूयेत
लुट्- बोभविता	**आशीर्**-बोभविषीष्ट
लृट्-बोभविष्यते	**लुङ्**-अबोभविष्ट
लोट्-बोभूयताम्	**लृङ्**-अबोभविष्यत

भावकर्मप्रक्रिया

४४९ भावकर्मणोः १। ३। १३॥

भावे कर्मणि च धातोः लस्यात्मनेपदम्।

भाव और कर्ममें धातुसे लकारके स्थानमें आत्मनेपद होता है।

४५० सार्वधातुके यक् ३। १। ६७॥

धातोर्यक् प्रत्ययः स्यात् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके परे।

भाव और कर्मवाची सार्वधातुक परे होनेपर धातुसे 'यक्' प्रत्यय होता है।

वाच्य तीन प्रकारके होते हैं—

(१) **कर्तृवाच्य**—जहाँ क्रिया कर्ताके अनुसार हो।

(२) **कर्मवाच्य**—जहाँ क्रिया कर्मके अनुसार हो।

(३) **भाववाच्य**—जहाँ क्रियाका अर्थ ही प्रधान हो।

यथा—

(१) **अनुशोचन्ति**—गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।
(२। ११)

यहाँ 'अनुशोचन्ति' क्रिया 'कर्तृवाच्य' में आती है।

(२) कर्मवाच्य और भाव वाच्यमें केवल 'आत्मनेपद' के प्रत्यय लगते हैं—

उच्यते—मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते। (१८। २५) कर्मवाच्य। धातु और प्रत्ययके मध्यमें 'यक्' प्रत्यय लगता है। सार्वधातुकमें अर्थात् लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्में। यथा—

अवाप्यते-अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते। (१२। ५) अव-आप्।

अभि-हन्=अभ्यहन्यन्त (१। १३) लङ् लकार।

(क) 'यक्' प्रत्यय होनेपर धातुको गुण-वृद्धि आदेश नहीं होते। यथा—

लिप्यते-सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते। (५। ७) लिप्-लिप्त होना।

प्रमुच्यते-निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते। (५। ३) प्र- मुच्।

(ख) भाववाच्य क्रिया केवल प्रथम पुरुष एकवचनमें ही आती है। यथा—

अतिरिच्यते-सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते (२। ३४) अति+रिच्।

(ग) आकारान्त धातुओंके अन्तिम 'आ' को 'ई' में बदल देते हैं—अभिधीयते-इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। (१३। १) अभि-धा, वि-धा=विधीयते (२। ४४), अनु-वि-धा= अनुविधीयते सोपसर्ग (२। ६७)। दा-दीयते (१७। २०)।

(घ) ऋकारान्त धातुओंके 'ऋ' को 'रि' में बदल देते हैं। यथा—

क्रियन्ते-दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः। (७। २५) आ-वृ=आव्रियते (३। ३८)। हृ=ह्रियते (६। ४४)।

(ङ) यज्, वच्, ग्रह, ह्व धातुओंके 'य' को 'इ', 'व' को 'उ'

और 'र' को 'ऋ' सम्प्रसारण होता है। यथा—

इज्यते-अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।

इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥ (१७। १२)

उच्यते-अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते। (२। २५) वच्।

गृह्यते-असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (६। ३५) ग्रह्।

(च) धातुकी उपधामें अनुनासिक वर्णका लोप होता है। यथा—

अनुरज्यते- स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या

जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च। (११। ३६) अनु-रञ्ज्।

णिजन्त रूपोंका कर्मवाच्यमें बदलना

उद्-सद्-सादि=उत्साद्यन्ते (१। ४३)। कृ-कारि=कार्यते (३। ५)। धृ-धारि=धार्यते (७। ५)। वि-चल-चालि=विचाल्यते (६। २२)।

भावकर्मप्रक्रियाके उदाहरण

उप्-लभ्=उपलभ्यते (१५। ३), उप-लिप्=उपलिप्यते (१३। ३२), परि-दह्=परिदह्यते (१। ३०), परि-सम-आ-आप्=परिसमाप्यते (४। ३३), युज्-युज्यते (१०। ७), प्र-युज्=प्रयुज्यते (१७। २६), मुच्-मुच्यन्ते (३। १३), वि-शिष्=विशिष्यते। (१२। १२), सम्-दृश=सन्दृश्यन्ते (११। २७)।

भावकर्मप्रक्रियाके रूप

(कर्मवाच्य)

लट्- लभ्यते	लभ्येते	लभ्यन्ते
लोट्- लभ्यताम्	लभ्येताम्	लभ्यन्ताम्
विधि०-लभ्येत	लभ्येयाताम्	लभ्येरन्
लङ्-अलभ्यत	अलभ्येताम्	अलभ्यन्त

शेष लकारोंके रूप कर्तृवाच्यके समान हैं—

लिट्-लेभे, **लुट्**—लब्धा, **लृट्**—लप्स्यते, **आशीर्**—लप्सीष्ट, **लुङ्**—अलब्ध, **लृङ्**—अलप्स्यत।

भाववाच्यके रूप केवल एकवचन और नपुंसक लिङ्गमें आते हैं।

इति भावकर्मप्रक्रिया

कर्मकर्तृप्रक्रिया

४५१ कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः ३। १। ८७॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत् स्यात्।

कर्मस्थ क्रियाके समान क्रियावाला कर्ता कर्मवत् होता है।

तप्—तप्यन्ते (१७। ५) जनाः तपः तपन्ति, तपांसि स्वयमेव तप्यन्ते। यथा—

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥ (१७।५)

इति कर्मकर्तृप्रक्रिया

कृदन्ताः

४५२ धातोः ३। १। ९१॥

आ तृतीयाध्यायसमाप्तेर्ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः।

इस सूत्रसे लेकर तृतीयाध्यायकी समाप्ति तक जो प्रत्यय हैं वे धातुओंसे लगते हैं, इन्हें 'कृत्' प्रत्यय कहते हैं। 'कृत्' प्रत्ययोंसे बने शब्द 'कृदन्त' कहलाते हैं। यथा—

कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। (९। ३१)

भज्+क्तः=भक्तः।

२५३ कृदतिङ् ३। १। ९३॥

अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात्।

यहाँ धात्वधिकारमें तिङ्भिन्न प्रत्ययोंकी 'कृत्' संज्ञा होती है।

यथा—

अतीतः—अति+इ+कर्तामें 'क्त'।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो। (१४। २१)

ये कृदन्त शब्द सुबन्त शब्दोंकी तरह चलते हैं। यथा—भक्तः भक्तौ भक्ताः। परन्तु कुछ शब्द अव्यय ही रहते हैं। यथा—

'भुक्त्वा'—ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। (९। २१)

४५४ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३। ४। ७०॥

एते भावकर्मणोरेव स्युः।

कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्ममें ही आते हैं।

कृदन्ते कृत्यप्रत्ययाः

सामान्यतया 'कृत्' प्रत्यय तीन प्रकारके हैं—

(१) कृत्य (२) कृत् (३) उणादि।

कृत्यप्रत्यय

कृत्य प्रत्यय सात प्रकारके हैं—

(१) तव्य (२) तव्यत् (३) अनीयर् (४) केलिमर् (५) यत् (६) क्यप् (७) ण्यत्।

४५५ तव्यत्तव्यानीयरः ३। १। ९६॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः।

धातुसे तव्यत्, तव्य और अनीयर् भाव तथा कर्ममें होते हैं।

तव्यत् और तव्यमें भेद केवल इतना ही है 'त्' अन्त-प्रत्यय 'स्वरित' होते हैं।

१ तव्यत्

अवाप्तव्यम्-अव-आप्+तव्यत्। कर्तव्यम्-कृ+कर्मणि तव्यत्।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥ (३। २२)

गम्+(कर्मणि) तव्यत्=गन्तव्यम् (४। २४)

ज्ञा+(कर्मणि) तव्यत्=ज्ञातव्यम् (७। २)
दा+(कर्मणि) तव्यत्=दातव्यम् (१७। २०)
परि–मार्गि+तव्यत्=परिमार्गितव्यम् (१५। ४)
बुध्+(कर्मणि) तव्यत्=बोद्धव्यम् (४। १७)
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥
मन्+(कर्मणि) तव्यत्=मन्तव्यः (९। ३०)
यज्+(कर्मणि) तव्यत्=यष्टव्यम् (१७। ११)
युज्+(कर्मणि) तव्यत्=योक्तव्यः (६। २३)
युध्+(कर्मणि) तव्यत्=योद्धव्यम् (१। २२)
विद्+(कर्मणि) तव्यत्=वेदितव्यम् (११। १८)
श्रु+(कर्मणि) तव्यत्=श्रोतव्यस्य (२। ५२)

केलिमर उपसंख्यानम् (वार्तिक)

धातुओंसे भाव और कर्ममें केलिमर प्रत्यय भी होता है।

अनीयर् और केलिमर् प्रत्ययों के उदाहरण गीतामें उपलब्ध नहीं होते।

४५६ अचो यत् ३। १। ९७॥

अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात्।

अजन्त धातुसे 'यत्' प्रत्यय होता है।

४५७ ईद्यति ६। ४। ६५॥

यति परे आत ईत् स्यात्।

'यत्' प्रत्यय परे होनेपर आदन्त धातुके 'आ' को 'ई' हो जाता है।

४५८ पोरदुपधात् ३। १। ९८॥

पवर्गान्ताददुपधाद् यत् स्यात्।

पवर्गान्त और 'अत्' उपधावाली धातुसे 'यत्' प्रत्यय होता है।

ज्ञा+कर्मणि यत्=ज्ञेयः।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः। (८। २)
रस्+कर्मणि यत्=रस्याः (१७। ८)

शक्+कर्मणि यत्=शक्यम्।
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः। (१८। ११)
लभ्+कर्मणि यत्=लभ्यः (८। २२)

३ 'क्यप्' प्रत्यय

४५९ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ३। १। १०९॥
एभ्यः क्यप् स्यात्।
इ, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष् धातुओंसे 'क्यप्' प्रत्यय होता है।
शास्+कर्मणि क्यप्=शिष्यः।
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। (२। ७)

४ ण्यत्

४६० ऋहलोर्ण्यत् ३। १। १२४॥
ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत्।
ऋवर्णान्त और हलन्त धातुसे 'ण्यत्' प्रत्यय होता है। यथा—
आ-चर्+कर्मणि 'ण्यत्'=आचार्य।
पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्। (१। ३)
अञ्ज्+ण्यत् करणे=आज्यम् (९। १६)
ईड्+कर्मणि ण्यत्=ईड्यम् (११। ४४)
कम्-कामि (णिच्)+कर्मणि ण्यत्=काम्यानाम्। यथा—
काम्यानां कर्मणा न्यासं संन्यासं कवयो विदुः। (१८। २)
कृ+ण्यत्=कार्यम् (३। १७)
चिन्त्+कर्मणि ण्यत्=चिन्त्यः (१०। १७)
त्यज्+कर्मणि ण्यत्=त्याज्यम्
त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः। (१८। ३)
द्विष्+कर्मणि ण्यत्=द्वेष्यः (९। २९)
वच्+कर्मणि ण्यत्=वाक्यम् (१। २१), वाक्येन (३। २)।
४६१ चजोः कु घिण्ण्यतोः ७। ३। ५२॥
चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे।
चकार और जकारको कुत्व होता है, घित् या ण्यत् प्रत्यय परे रहते।

विद्+कर्मणि ण्यत्=वेद्यः (१५।१५), वेद्यम् (११।३८) यथा-
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप। (११। ३८)

इति कृत्यप्रत्ययाः

कर्तृवाच्यकृदन्तप्रकरणम्

पूर्वकृदन्तम्

भूतकालिक कृदन्त ('क्त' 'क्तवतु')

४६२ क्तक्तवतु निष्ठा १। १। २६॥

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः।

'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्यय निष्ठासंज्ञक होते हैं।

४६३ निष्ठा ३। २। १०२॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात्।

भूतार्थवृत्ति धातुसे निष्ठासंज्ञक प्रत्यय होते हैं।

'निष्ठा'का अर्थ समाप्ति है और 'क्त' 'क्तवतु' दोनों प्रत्यय 'निष्ठा' कहलाते हैं। इन प्रत्ययोंसे निष्पन्न कृदन्त भूतकालके अर्थका बोध कराते हैं। 'उकावितौ' अर्थात् 'क्त' और 'क्तवतु' मेंसे 'क' और 'उ' का लोप होकर इनके 'त' और 'तवत्' रूप शेष रहते हैं।

'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः'—सूत्रसे 'क्त' प्रत्यय कर्म और भावमें लगता है और 'कर्त्तरि कृत्' सूत्रसे क्तवतु कर्तामें लगता है।

यथा—

'ब्रू'-वच्+कर्मणि क्तः=उक्तः

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत। (१। २४)

परि-क्लिश्+भावे क्तः=परिक्लिष्टम् (१७। २१)

४६४ गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ३। ४। ७२॥

एभ्यः कर्तरि क्तः स्यात्।

गत्यर्थक तथा अकर्मक धातुओंसे एवं सोपसर्ग श्लिष्, शीङ्—आदि धातुओंसे 'क्त' प्रत्यय कर्तामें होता है। यथा—

अभि-रम्+कर्तरि क्तः=अभिरतः।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। (१८। ४५)

दृश्+कर्तरि क्तवतु=दृष्टवान्

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः॥ (११। ५२)

श्रु+कर्तरि क्तवतु=श्रुतवान्। यथा—

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम्। (१८। ७५)

कर्तामें 'क्त'

अनु-प्र-पद्+(कर्तरि) क्तः=अनुप्रपन्नः

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते। (९। २१)

अभि-जन् जा+(कर्तरि) क्तः=अभिजातः (१६।५), अभिजातस्य (१६। ३)।

अभि-प्र-वृत्+(कर्तरि) क्तः=अभिप्रवृत्तः (४। २०)

अव-स्था+(कर्तरि) क्तः=अवस्थितः (९। ४), अवस्थितम् (१५। ११)।

आ-गम्+(कर्तरि) क्तः=आगताः (४। १०)

आ-पद्+(कर्तरि) क्तः=आपन्नाः (१६। २०), आपन्नम् (७। २४)

उद्-स्था+(कर्तरि) क्तः=उत्थिता (११। १२)

उप-पद्+(कर्तरि) क्तः=उपपन्नम् (२। ३२)

उप-रम्+कर्तरि क्तः=उपरतम् (२। ३५)

उप-आ-श्रि+(कर्तरि) क्तः=उपाश्रिताः (४। १०)

उप-इ+(कर्तरि) क्तः=उपेतः (६। ३७), उपेताः (१२। २)।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।

गम्+(कर्तरि) क्तः=गतः (११। ५१), गताः (१४। १)।

तुष्+(कर्तरि) क्तः=तुष्टः (२। ५५)
नश्+(कर्तरि) क्तः=नष्टः (१८। ७३)
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
प्र–नश्=प्रनश्+(कर्तरि) क्तः=प्रनष्टः
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय। (१८। ७२)
प्र–पद्+(कर्तरि) क्तः=प्रपन्नम् (२। ७)
प्र–या+(कर्तरि) क्तः=प्रयाताः (८। २३)
प्र–ली+(कर्तरि) क्तः=प्रलीनः (१४। १५)
प्र–सञ्ज्+(कर्तरि) क्तः=प्रसक्ताः (१६। १६)
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।
प्र–सद्+(कर्तरि) क्तः=प्रसन्नेन (११। ४७)
प्र–आप्+(कर्तरि) क्तः=प्राप्तः (१८। ५०)
प्र–इ+(कर्तरि) क्तः=प्रेतान् (१७। ४)
भज्+(कर्तरि) क्तः=भक्तः (४। ३), भक्ताः (९। ३३)।
मन्+(कर्तरि) क्तः=मतः (६। ३२)
रम्+(कर्तरि) क्तः=रताः (५। २५)
लुभ्+(कर्तरि) क्तः=लुब्धः (१८। २७)
वि–क्रम्+(कर्तरि) क्तः=विक्रान्तः (१। ६)
वि–गम्+(कर्तरि) क्तः=विगतः (११। १) यथा—
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।
वि–तन्+(कर्तरि) क्तः=वितताः (४। ३२)
श्रि+(कर्तरि) क्तः=श्रिताः (९। १२)
सम्–इन्ध+(कर्तरि) क्तः=समिद्धः (४। ३७)
सम्–उप–स्था+(कर्तरि) क्तः=समुपस्थितम् (२। २)
कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
सम्–उप–आ–श्रि+(कर्तरि) क्तः=समुपाश्रितः (१८। ५२)
स्था+(कर्तरि) क्तः=स्थितः। यथा—

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव। (१८। ७३)

हृष्+(कर्तरि) क्तः=हृष्टः, (णिच्) हृषितः (११।४५)।यथा—

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा।

कृदन्तप्रकरणम्

४६५ कर्तरि कृत् ३। ४। ६७॥

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात्।

'कृत्' संज्ञक प्रत्यय कर्तामें होता है।

वि+अति-इ=(कर्तरि) क्तः=व्यतीतानि (४। ५)

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥

वि-अव-सो+(कर्तरि) क्तः=व्यवसिताः (१। ४५) यथा—

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।

यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥ व्यवसितः (९। ३०)

वि-अव-स्था+(कर्तरि) क्तः=व्यवस्थितौ (३। ३४), व्यवस्थितान् (१। २०)।

सम्-नि-विश्+(कर्तरि) क्तः=संनिविष्टः (१५। १५)

सम्-वृत्+(कर्तरि) क्तः=संवृत्तः (११। ५१)

सञ्ज्+(कर्तरि) क्तः=सक्तः (५। १२) यथा—

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।

सम्-अति-इ+(कर्तरि) क्तः=समतीतानि (७। २६)

सम्-अव-स्था+(कर्तरि) क्तः=समवस्थितम् (१३। २८)

सम्+अव-इ+(कर्तरि) क्तः=समवेताः (१।१), समवेतान् (१।२५)

सम्-आ-गम्+(कर्तरि) क्तः=समागताः (१। २३)

सम्-आ-हा+(कर्तरि) क्तः=समाहितः (६। ७)

स्तम्भ्+(कर्तरि) क्तः=स्तब्धः (१८। २८), स्तब्धाः (१६। १७)।

स्निह्+(कर्तरि) क्तः=स्निग्धाः (१७। ८)

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।

'क्त' प्रत्यय कर्मणि

वि-आप्+(कर्मणि) क्तः=व्याप्तम् (११। २०)
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
वि-वह्+(कर्मणि) क्तः=व्यूढम् (१। २)
शम्+(कर्मणि) क्तः=शान्तः (१८। ५३)
श्रु+(कर्मणि) क्तः=श्रुतौ (११। २)
भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
सम्-प्र-कीर्ति+(कर्मणि) क्तः=सम्प्रकीर्तितः (१८। ४)
सम्-भू=भावि+(कर्मणि) क्तः=संभावितस्य (२। ३४)
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।
सम्-ऋध्+(कर्मणि) क्तः=समृद्धम् (११। ३३)
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
सृज्+(कर्मणि) क्तः=सृष्टम् (४। १३)
स्मृ+(कर्मणि) क्तः=स्मृतः (१७। २३)
हन्+(कर्मणि) क्तः=हतः (२। ३७)
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
हु+(कर्मणि) क्तः=हुतम् (४। २४)

'घञ्' प्रत्यय

४६६ हलश्च ३। ३। १२१॥

हलन्ताद् धातोर्घञ् स्यात्।
हलन्त धातुसे 'घञ्' प्रत्यय होता है।
शब्द्+(भावे) घञ्=शब्दः (७। ८)
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।
शम्+(भावे) घञ्=शमः (६। ३)
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।
सम्-हन्+(भावे) घञ्=सङ्घातः (१३। ६)

सम्-नि-अस्+(भावे) घञ्=संन्यासः (५। २)
संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
सम्-मुह+(भावे) घञ्=संमोहः (२। ६३)
सम्-वद्+(भावे) घञ्=संवादम् (१८। ७०)
सञ्ज्+(भावे) घञ्=सङ्गः (२। ४७) यथा—
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।
सम्-आ-रभ्+(भावे) घञ्=समारम्भाः (४। १९)
सम्-अस्+(भावे) घञ्=समासेन (१३। ३)
सृज्+(भावे) घञ्=सर्गः (५। १९)
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
स्पृश्+(कर्मणि) घञ्=स्पर्शान् (५। २७)
हृष्+(भावे) घञ्=हर्षम् (१। १२)

'खल्' प्रत्यय

४६७ ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३। ३। १२६॥
एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् स्यात्।
ईषद् आदियोंके उपपद होनेपर धातुसे 'खल्' प्रत्यय होता है। यथा—
सु-दुर्-दृश+(कर्मणि) खल्=सुदुर्दर्शम् (११। ५२)
सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः॥
सु-दुर्-लभ्+(कर्मणि) खल्=सुदुर्लभः (७। १९)
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।
सु-दुस्—कृ+(कर्मणि) खल्=सुदुष्करम् (६। ३४)
सु—लभ्+(कर्मणि) खल्=सुलभः (८। १४)
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।

'क्तिन्' प्रत्यय

४६८ स्त्रियां क्तिन् ३। ३। ९४॥
स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात्।

स्त्रीलिङ्गमें भावादिमें 'क्तिन्' प्रत्यय होता है। 'घञ्' का अपवाद है।

वि=अञ्ज्+(कर्मणि) क्तिन्=व्यक्तय: (८। १८)

अव्यक्ताद् व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।

शम्+(भावे) क्तिन्=शान्ति: (१२। १२)

त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।

सम्-सिध्+(भावे) क्तिन्=संसिद्धिम् (३। २०)

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:।

सिध्+(भावे) क्तिन्=सिद्धये (१८। १३)

स्था+(भावे) क्तिन्=स्थिति: (२। ७२)

एषा ब्राह्मी स्थिति: पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

स्मृ+(भावे) क्तिन्=स्मृति: (१०। ३४)

हा+(भावे) क्तिन्=हानि: (२। ६५)

प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते।

'अथुच्' प्रत्यय

२६९ ट्वितोऽथुच् ३। ३। ८९॥

अयं भाव एव स्वभावात्।

'टु' इत् धातुसे भावमें 'अथुच्' प्रत्यय होता है।

टुवेपृ+(भावे) अथुच्=वेपथु: (१। २९)

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।

'अङ्' प्रत्यय

४७० आतश्चोपसर्गे ३। ३। १०६॥

आकारान्तेभ्य उपसर्गे उपपदे स्त्रियाम् अङ् स्यात्।

आकारान्त धातुओंसे उपसर्ग उपपद होनेपर स्त्रीलिङ्गमें 'अङ्' प्रत्यय होता है। यथा—

व्यथ+(भावे) अङ्=व्यथा (११। ४९)

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।

श्रध् धा+(भावे) अङ्=श्रद्धा (१७। २)
सम्–प्रति—स्था+(भावे) अङ्=संप्रतिष्ठा (१५। ३)
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
सेव्+(भावे) अङ्=सेवया (४। ३४)
स्पृह्+(भावे) अङ्=स्पृहा (४। १४)
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
हिंस्+(भावे) अङ्=हिंसाम् (१८। २५)

'ष्ट्रन्' प्रत्यय

४७१ दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ३। २। १८२॥
दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् करणेऽर्थे।
दाप् आदिसे 'ष्ट्रन्' प्रत्यय होता है, करण अर्थमें।
शास्+(कर्तरि) ष्ट्रन्=शास्त्रम् (१६। २४)
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
शस्+(करणे) ष्ट्रन्=शस्त्राणि (२। २३)
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

'अप्' प्रत्यय

४७२ ऋृदोरप् ३। ३। ५७।
ऋृवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाप् स्यात्।
ऋृवर्णान्त और उवर्णान्त धातुसे परे 'अप्' प्रत्यय होता है।
सम्–ग्रह्+(भावे) अप्=संग्रहेण (८। ११)
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।
सम्–भू+(भावे) अप्=संभवः (१४। ३)
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।

'ल्युट्' प्रत्यय

४७३ कृत्यल्युटो बहुलम् ३। ३। ११३॥
भावे कर्तरि च कारके संज्ञायामिति च निवृत्तम्।

कृत्य प्रत्यय और ल्युट् किसी विशेष अर्थमें न होकर अनेकानेक अर्थोंमें होते हैं।

सम-नि-अस्+(भावे) ल्युट्=संन्यसनात् (३।४) स्था+ (अधिकरणे) ल्युट्=स्थानम् (५।५) यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।

४७४ ल्युट् च ३। ३। ११५॥

नपुंसके भावार्थे ल्युडपि स्यात्।

नपुंसक भाव अर्थमें ल्युट् प्रत्यय भी होता है।

स्पृश्+(करणे) ल्युट्=स्पर्शनम् (१५।९)

'क्विप्' प्रत्यय

संपदादिभ्यः क्विप्। (वार्तिक)

संपदादिगणपठित धातुओंसे क्विप् प्रत्यय होता है।

४७५ अन्येभ्योऽपि दृश्यते ३। २। १७८॥

क्विप् स्यात्।

धातुओंसे भावमें क्विप् प्रत्यय होता है।

सम्-पद्+(भावे) क्विप्=संपत् (१६।५)

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।

४७६ एरच् ३। ३। ५६

इवर्णान्ताद्धातोरच् स्यात्।

इकारान्त धातुसे अच् प्रत्यय होता है।

सम्-शी+(भावे) अच्=संशयः (८।५)

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

'कि' प्रत्यय

४७७ उपसर्गे घोः किः ३। ३। ९२॥

घुसंज्ञकधातुभ्यः किप्रत्ययः स्यात् उपसर्गपूर्वे सति।

उपसर्ग पूर्वमें हो तो घुसंज्ञक धातुओंसे 'कि' प्रत्यय होता है।

सम्-आ धा+(कर्मणि) कि=समाधौ। (२।५३)

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।

'नन्' प्रत्यय

४७८ स्वपो नन् ३। ३। ९१॥

स्वप् धातोः नन् स्यात्।

स्वप् धातुसे नन् प्रत्यय होता है।

स्वप्+(भावे)=नन्=स्वप्नम् (१८। ३५)

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥

वर्तमानकालिक 'शतृ' 'शानच्' प्रत्यय

'शानच्' प्रत्यय

४७९ लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३। २। १२४॥

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे सतीत्यर्थः।

'लट्' के स्थानमें 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्यय होते हैं अप्रथमान्तके साथ समानाधिकरण होनेपर।

हन्+(कर्मणि) शानच्=हन्यमाने (२। २०)

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

४८० तौ सत् ३। २। १२७॥

तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः।

'शतृ' और 'शानच्' की 'सत्' संज्ञा होती है।

'शतृ' मेंसे 'श्' और 'ऋ' का लोप होकर 'अत्' शेष बचता है और 'शानच्' में से 'श्' और 'च्' का लोप होकर 'आन' शेष बचता है।

परस्मैपदीय धातुओंसे 'शतृ' प्रत्यय होता है।

आत्मनेपदीय धातुओंसे 'शानच्' होता है।

प्र–हस्+शतृ=प्रहसन् (२। १०)

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।

४८१ आने मुक् ७। २। ८२॥

अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे।

अदन्त अङ्गको 'मुक्' का आगम होता है, 'आन' परे हो तो।

अर्थात् भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि गणकी धातुओंका 'आन' 'मान' में बदल जाता है। यथा—

त्वर्+शानच्=त्वरमाणाः (११। २७) भ्वादि।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।

कृ+शानच्=कुर्वाणः (१८। ५६)। तनादिगण

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

'शानच्' अन्त शब्दोंके रूप पुँल्लिङ्गमें 'देव' की तरह, स्त्रीलिङ्गमें 'लता' की तरह और नपुंसकलिङ्गमें 'फल' की तरह होते हैं।

'शतृ' प्रत्यय

अनु-चिन्त्=चिन्ति+शतृ=अनुचिन्तयन् (८। ८)

परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।

अनु-स्मृ+शतृ=अनुस्मरन् (८। १३), त्यज्+शतृ=त्यजन् (१८। १३)।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

अभि-असूय्+शतृ=अभ्यसूयन्तः (३। ३२)

अश्+शतृ=अश्नन् (५। ८)

आ-चर्+शतृ=आचरन् (३। १९), आचरतः (४। २३)।

उत्-क्रम्+शतृ=उत्क्रामन्तम् (१५। १०)

कथ्+णिच्=कथि+शतृ=कथयन्तः (१०। ९), कथयतः (१८। ७५)।

कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।

कृश्+णिच्=कर्शि+शतृ=कर्शयन्तः (१७। ६)

कल्+णिच्=कलि+शतृ=कलयताम् (१०। ३०)

काङ्क्ष्+शतृ=काङ्क्षन्तः (४। १२)

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।

कृ+णिच्=कारि+शतृ=कारयन् (५। १३)
कृत्+णिच्=कीर्ति+शतृ=कीर्तयन्तः (९। १४)
कृ+शतृ=कुर्वन् (१२। १०)
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि।
गम्+शतृ=गच्छन् (५। ८)
ग्रह्+शतृ=गृह्णन् (५। ९)
हन्+शतृ=घ्नतः (१। ३५)
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
चर्+शतृ=चरन् (२। ६४) चरताम् (२। ६७)
चिन्त्+णिच्=चिन्ति+शतृ=चिन्तयन्तः (९। २२)
छल्+णिच्=छलि+शतृ=छलयताम् (१०। ३६)
द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जागृ+शतृ=जाग्रतः (६। १६)
ज्ञा=जा+शतृ=जानन् (८। २७)
नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
जि+सन्=जिगीष्+शतृ=जिगीषताम् (१०। ३८)
घ्रा=जिघ्र+शतृ=जिघ्रन् (५। ८)
ज्वल्+ शतृ=ज्वलद्भिः (११। ३०)
तप्+शतृ=तपन्तम् (११। १९)

पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।

स्था=तिष्ठ+शतृ=तिष्ठन्तम् (१३। २७)
त्यज्+शतृ=त्यजन् (८। १३)
दम्+णिच्=दमि+शतृ=दमयताम् (१०। ३८)
दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
द्विष्+शतृ=द्विषतः (१६। १९)
धृ+णिच्=धारि+शतृ=धारयन् (६। १३)

ध्यै+शतृ=ध्यायतः (२। ६२), ध्यायन्तः (१२। ६)
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।
नमस्+क्यच्=नमस्य+शतृ=नमस्यन्तः (९। १४)
नश्+शतृ=नश्यत्सु (८। २०)
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।
निन्द+शतृ=निन्दन्तः (२। ३६)
नि–मिष्+शतृ=निमिषन् (५। ९)
परि–चिन्त्+णिच्=परिचिन्ति+शतृ=परिचिन्तयन् (१०। १७)
कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
पू+शतृ=पवताम् (१०। ३१) पवनः पवतामस्मि।
प्र–दृश्=पश्य+शतृ=प्रपश्यद्भिः (१। ३९)
प्र–लप्+शतृ=प्रलपन् (५। ९)
प्र–वद्+शतृ=प्रवदताम् (१०। ३२) वादः प्रवदतामहम्।
बुध्+णिच्=बोधि+शतृ=बोधयन्तः (१०। ९)
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
भ्रम+णिच्=भ्रामि+शतृ=भ्रामयन् (१८। ६१)
यज्+शतृ=यजन्तः ९। १५, यत्+शतृ=यततः (२। ६०)
युज्+शतृ=युञ्जन्तः (६। १९)
वि–ज्ञा=जा+शतृ=विजानतः (२। ४६)
वि–नश्+शतृ=विनश्यत्सु (१३। २७)
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।
वि–सद्=सीद्=विषीद्+शतृ=विषीदन् (१। २८)
वि–सृज्+शतृ=विसृजन् (५। ९)
वि–अनु–नद्+णिच्=व्यनुनादि+शतृ=व्यनुनादयन् (१। १९)
वि–आ–हृ+शतृ=व्याहरन् (८। १३)

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

श्रु+शतृ=शृण्वन् (५। ८), शृण्वतः (१०। १८)

श्वस्+शतृ=श्वसन् (५। ८)

सम्–जन्+णिच्=संजनि+शतृ=संजनयन् (१। १२)

सम्–दृश्=पश्य्+शतृ=संपश्यन् (३। २०)

सम्–यम्+शतृ=संयमताम् (१०। २९)।

पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।

अस्+शतृ=सन् (४। ६)

सम्–आ–चर+शतृ=समाचरन् (३। २६)

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।

'शानच्' प्रत्यय

आस्+शानच्=आसीनः (१४। २३), आसीनम् (९। ९)

उद्–आस्+शानच्=उदासीनः (१२। १६)

ग्रस्+शानच्=ग्रसमानः (११। ३०)

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।

प्री+(कर्मणि) शानच्=प्रीयमाणाय (१०। १)

प्र–ब्रू=वच्+(कर्मणि) शानच्=प्रोच्यमानम् (१८। २९)

भुज+शानच्=भुञ्जानम् (१५। १०)

युध्+शानच्=युयुधानः (१। ४)

वृत्+शानच्=वर्तमानः (६। ३१)

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।

श्रध्+धा+शानच्=श्रद्दधानाः (१२। २०)

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।

भविष्यत्कालिक कृत्-प्रत्यय

शतृ-शानच्

भू+स्य+शतृ=भविष्यताम् (१०। ३४) यथा—

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।

भू+स्य+शतृ, आर्ष उ.पु. भविष्याणि (७। २६)

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥

भविष्यन्ति (११। ३२)

युध्+स्य+शानच्=योत्स्यमानान् (१। २३)

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।

४८२ लृटः सद्वा ३। ३। १४॥

लृट्स्थाने सत् प्रत्ययो (शतृशानचौ) वा।

'लृट्' के स्थानमें 'सत्' प्रत्यय विकल्पसे होता है।

'शतृ' और 'शानच्' की सत् संज्ञा है।

'ण्वुल्'-'तृच्'

४८३ ण्वुल्तृचौ ३। १। १३३॥

धातोरेतौ स्तः। कर्तरि कृद् इति कर्त्रर्थे।

धातुसे 'ण्वुल' और 'तृच्' प्रत्यय होते हैं।

'कर्तरि कृत्' इस सूत्रसे कर्ताके अर्थमें ये प्रत्यय होते हैं।

४८४ युवोरनाकौ ७। १। १॥

यु वु एतयोरनाकौ स्तः।

'यु' और 'वु' इनको क्रमसे 'अन' और 'अक' आदेश होते हैं।

अभि-असूय्+ण्वुल्=अभ्यसूयकाः (१६। १८)

मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।

नी+ण्वुल्=नायकाः (१।७)

नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते।

पू+ण्वुल्=पावकः (१५।६)

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

प्र–काश्+ण्वुल्=प्रकाशकम् (१४।६)

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।

उप–दृश्+तृच्=उपद्रष्टा (१३।२२)

कृ+तृच्=कर्ता। (३।२७)

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

छिद्+तृच्=छेत्ता (६।३९)

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।

दृश्+तृच्=द्रष्टा (१४।१९), धा+तृच्=धाता (१०।३३)

परि–ज्ञा+तृच=परिज्ञाता (१८।१८), भृ+तृच्=भर्ता (९।१८)

भुज्+तृच=भोक्ता (१३।२२), भोक्तारम् (५।२९)।

सम्–उद्–हृ+तृच्=समुद्धर्ता (१२।७)

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

ल्यु-णिनि-अच् प्रत्यय

४८५ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४॥

नन्द्यादेर्ल्युः, ग्रह्यादेर्णिनिः, पचादेरच् स्यात्।

नन्द्यादिसे 'ल्यु', ग्रह्यादिसे 'णिनि' और पचादिसे 'अच्' प्रत्यय होता है।

'ल्यु'

नश्+णिच्=नाशि+ल्यु=नाशनम् (१६।२१) 'यु' को 'अन'।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥

मुह+णिच्=मोहि+ल्यु=मोहनम् (१४। ८) 'यु' को 'अन'। तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।

'णिनि'

आ-वृत्+णिनि=आवर्तिनः (८। १६) णिनि=इन्।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

'अच्'

अर्ह्+(कर्तरि) अच्=अर्हाः (१। ३७)

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्।

क्षर्+(कर्तरि) अच्=क्षरः (८। ४)

प्र-अन्+(कर्तरि) अच्=प्राणम् (४। २९)

मन्द+(कर्तरि) अच्=मन्दान् (३। २९)

युध्+(कर्तरि) अच्=योधाः (११। ३२)

४८६ विदेः शतुर्वसुः ७। १। ३६॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा।

'विद्' धातुसे परे 'शतृ' के स्थानमें 'वसु' आदेश विकल्पसे होता है।

विद्+शतृ-वसु=विद्वान् (३। २६)

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।

'उ' प्रत्यय

४८७ सनाशंसभिक्ष उः ३। २। १६८॥

सन्नन्त, आशंस् और भिक्ष् धातुसे 'उ' प्रत्यय होता है।

आ-रुह्+सन्=आरुरुक्ष्+उ=आरुरुक्षोः (६। ३)

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

कृ+सन्=चिकीर्ष्+उ=चिकीर्षुः (३। २५)

ज्ञा+सन्=जिज्ञास्+उ=जिज्ञासुः (६। ४४)

युध्+सन्=युयुत्स्+उ=युयुत्सवः (१। १)

'क' प्रत्यय

४८८ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३। १। १३५॥

एभ्यः कः स्यात्।

इगुपधक धातु, ज्ञा-प्री-कृ धातुसे 'क' प्रत्यय होता है।

बुध्+कः=बुधः (५। २२)

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

'घिणुन्' प्रत्यय

४८९ सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिप-परिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजा-तिचरापचरामुषाभ्याहनश्च ३। २। १४२॥

एभ्यो घिणुन् स्यात्। इन धातुओंसे घिणुन् प्रत्यय होता है।

त्यज्+घिणुन्=त्यागी (१८। १०)

त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।

'इष्णुच्' प्रत्यय

४९० भुवश्च ३। २। १३८॥

भवतेर्धातोश्छन्दसि विषये तच्छीलादिष्वर्थेष्विष्णुच्प्रत्ययो भवति।

'भू' धातुसे वेदमें तच्छीलादि अर्थोंमें 'इष्णुच्' प्रत्यय होता है।

प्र-भू+इष्णुच्=प्रभविष्णु (१३। १६)

भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।

'डु' प्रत्यय

४९१ विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् ३। २। १८०॥

एभ्यो भुवो डुः स्यान्न तु संज्ञायाम्।

वि, प्र, सम उपसर्गपूर्वक 'भू' धातुसे डु प्रत्यय होता है। संज्ञासे भिन्न अर्थमें।

प्र-भू+डु=प्रभुः (५।१४)

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।

वि—भू+डु=विभुः (५।१५)

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।

भावकर्मवाच्य-कृदन्त-प्रकरणम्

'क्त' प्रत्यय

अनु-सम्-तन्+(कर्मणि) क्तः=अनुसंततानि (१५।२)

अनु-इ+(कर्मणि) क्तः=अन्विताः (१७।१)

अप-आ-वृ+(कर्मणि) क्तः=अपावृतम् (२।३२)

अभि-धा=हि+(कर्मणि) क्तः=अभिहिता (२।३९)

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।

अव-ज्ञा+(कर्मणि) क्तः=अवज्ञातम् (१७।२२)

अहं-कृ+(कर्मणि) क्तः=अहंकृतः (१८।१७)

आ-ख्या+(कर्मणि) क्तः=आख्यातम्। (१८।६३)

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।

आ-विश्+(कर्मणि) क्तः=आविष्टः (१।२८), आविष्टम् (२।१)।

आ-श्रि+(कर्मणि) क्तः=आश्रितः (१५।१४), आश्रितम् (९।११)।

ब्रू=वच्+(कर्मणि) क्तः=उक्तः (८।२१), उक्तम् (११।१)।

उद्—शिष्+(कर्मणि) क्तः=उच्छिष्टम् (१७।१०)

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।

उद्-आ-हृ+(कर्मणि) क्तः=उदाहृतः (१५।१७), उदाहृतम् (१३।६)।

उद्-यम+(कर्मणि) क्तः=उद्यताः (१। ४५)

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।

यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥

ऊर्ज्+णिच्=ऊर्जि+(कर्मणि) क्तः=ऊर्जितम् (१०। ४१)

ऋध्+(कर्मणि) क्तः=ऋद्धम् (२। ८)

काङ्क्ष्+(कर्मणि) क्तः=काङ्क्षितम् (१। ३३)

कृ+(कर्मणि) क्तः=कृतम् (४। १५), कृतेन (३। १८)।

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।

गै=गा+(कर्मणि) क्तः=गीतम् (१३। ४)

चूर्ण+(कर्मणि) क्तः=चूर्णितैः (११। २७)

केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु

संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः।

जन्=जा+(कर्मणि) क्तः=जातस्य (२। २७)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

जि+(कर्मणि) क्तः=जितः (५। १९)

जॄ+(कर्मणि) क्तः=जीर्णानि (२। २२)

ज्ञा+(कर्मणि) क्तः=ज्ञातेन (१०। ४२)

तन्+(कर्मणि) क्तः=ततम् (२। १७)

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।

तप्+(कर्मणि) क्तः=तप्तम् (१७। १७)

दृश्+णिच्=दर्शि+(कर्मणि) क्तः=दर्शितम् (११। ४७)

दीप्+(कर्मणि) क्तः=दीप्तम् (११। २४)

दृह्+(कर्मणि) क्तः=दृढम् (६। ३४)

दिव्+(कर्मणि) क्तः=द्यूतम् (१०। ३६)

द्यूतं छलयतामस्मि।

नश्+णिच्=नाशि+(कर्मणि) क्तः=नाशितम् (५। १६)

नि–ग्रह्+(कर्मणि) क्तः=निगृहीतानि (२। ६८)

नि–बन्ध्+(कर्मणि) क्तः=निबद्धः (१८। ६०)

नि–रुध्+(कर्मणि) क्तः=निरुद्धम् (६। २०)

नि–वृत्+(कर्मणि) क्तः=निवृत्तानि (१४। २२)

निस्–चि+(कर्मणि) क्तः=निश्चितम् (२।७), निश्चिताः (१६।११)

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।

नि–हन्+(कर्मणि) क्तः=निहताः (११। ३३)

परि–कीर्ति+(कर्मणि) क्तः=परिकीर्तितः (१८। ७)

परि–आप्+(कर्मणि) क्तः=पर्याप्तम् (१। १०)

परि–वस्=परिवस्+(कर्मणि) क्तः=पर्युषितम् (१७। १०)

पू+(कर्मणि) क्तः=पूताः (४। १०)

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।

प्रथ्+(कर्मणि) क्तः=प्रथितः (१५। १८)

प्र–दिश्+(कर्मणि) क्तः=प्रदिष्टम् (८। २८)

प्र–दीप्+(कर्मणि) क्तः=प्रदीप्तम् (११। २९)

प्र–युज्+(कर्मणि) क्तः=प्रयुक्तः (३। ३६)

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।

प्र–वृत्+(कर्मणि) क्तः=प्रवृत्तः (११।३२), प्रवृत्ते (१।२०)।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।

प्र–शंस्+(कर्मणि) क्तः=प्रशस्ते (१७। २६)

प्र–वच्+(कर्मणि) क्तः=प्रोक्तः (१०। ४०)

प्र–वे+(कर्मणि) क्तः=प्रोतम् (७। ७)

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।
बन्ध्+(कर्मणि) क्तः=बद्धाः (१६। १२)
मुह्-णिच्+(कर्मणि) क्तः=मोहितम् (७। १३), मोहिताः (४। १६)
युध्+(कर्मणि) क्तः=युद्धम् (२। ३२)
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।
लभ्+(कर्मणि) क्तः=लब्धम् (१६। १३)
वि-नि=यम्+(कर्मणि) क्तः=विनियतम् (६। १८)
वि-निस्=चि+(कर्मणि) क्तः=विनिश्चितैः (१३। ४)
वि-भज्+(कर्मणि) क्तः=विभक्तम् (१३। १६)
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
वि-मुच्+(कर्मणि) क्तः विमुक्तः (९। २८)
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।
वि-शिष्+(कर्मणि) क्तः=विशिष्टाः (१। ७)
वि-शुद्ध+(कर्मणि) क्तः= विशुद्धया (१८। ५१)
वि-धा+(कर्मणि) क्तः=विहिताः (१७। २३)

'क्त' भावे

जीव+(भावे) क्तः=जीवितेन (१। ३२)
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।
परि-क्लिश्+(भावे) क्तः=परिक्लिष्टम् (१७। २१)

अथोत्तरकृदन्तम्

'घञ्' प्रत्यय

४९२ भावे ३। ३। १८॥

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् स्यात्।

सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थके वाच्य होनेपर धातुसे 'घञ्' प्रत्यय होता है।

४९३ अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३। ३। १९॥

कर्तृभिन्ने कारके 'घञ्' स्यात्।

कर्तृभिन्न कारकमें 'घञ्' प्रत्यय होता है। यथा—

अधि–कृ+(भावे) घञ्=अधिकारः (२। ४७)

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

अभि–अस् (क्षेपणे)+(भावे) घञ्=अभ्यासात् (१२। १२) अभ्यासेन (६। ३५)।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात्।

अहं–कृ+(भावे) घञ्=अहंकारः (१३। ५)

अहंकारम् (१६। १८), अहंकारात् (१८। ५८),

यथा—

अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।

आ–चर्+(भावे) घञ्=आचारः (१६। ७)

आ–रभ्+(भावे) घञ्=आरम्भः (१४। १२)

क्रुध+(भावे) घञ्=क्रोधः (२। ६२), क्रोधात् (२। ६३)

क्लिश्+(भावे) घञ्=क्लेशः (१२। ५)

घुष्+(भावे) घञ्=घोषः (१। १९)

त्यज्+(भावे) घञ्=त्यागः (१८। ९)

सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।

दम्+(भावे) घञ्=दमः (१०। ४)

दम्भ्+(भावे) घञ्=दम्भः (१६। ४)

दृप्+(भावे) घञ्=दर्पः (१६। ४)

दुष्+(भावे) घञ्=दोषम् (१। ३८)

द्विष्+(भावे) घञ्=द्वेषः (१३। ६)

नश्+(भावे) घञ्=नाशाय (११। २९)

नि–बन्ध्+(भावे) घञ्=निबन्धाय (१६। ५)
नि–यम्+(भावे) घञ्=नियमम् (७। २०)
निर्–दिश्+(भावे) घञ्=निर्देशः (१७। २३)
नि–अस् (क्षेपणे)+(भावे) घञ्=न्यासम् (१८। २)
काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
परि–नम्+(भावे) घञ्=परिणामे (१८। ३७)
परि–त्यज्+(भावे) घञ्=परित्यागः (१८। ७)
प्र–काश्+(भावे) घञ्=प्रकाशः (७। २५)
प्र–नि–पत्+(भावे) घञ्=प्रणिपातेन (४। ३४)
प्रति–अव–इ+(भावे) घञ्=प्रत्यवायः (२। ४०)
प्र–मद्+(भावे) घञ=प्रमादो (१४। १३)
प्र–सञ्ज्+(भावे) क्तः=प्रसङ्गेन (१८। ३४)
प्र–सद्+(भावे) घञ्=प्रसादम् (२। ६४)
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।
बन्ध्+भावे घञ्=बन्धम् (१८। ३०), बन्धात् (५। ३)।
भू+(भावे) घञ्=भावः (२। १६)
भिद्+(भावे) घञ्=भेदम् (१७। ७)
मुह्+(भावे) घञ्=मोहः (११। १) मोहात् (१६। १०)।
लुभ्+(भावे) घञ्=लोभः (१४। १७)
सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
वद्+(भावे) घञ्=वादः (१०। ३२)
वस्+(भावे) घञ्=वासः (१। ४४)
वि–कृ+(भावे) घञ्=विकारान् (१३। १९)
वि–नश्+(भावे) घञ्=विनाशः (६। ४०), विनाशाय (४। ८)

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

वि-मोक्ष्+(भावे) घञ्=विमोक्षाय (१६। ५)
वि-सद्+(भावे) घञ्=विषादम् (१८। ३५)
वि-सृज्+(भावे) घञ्=विसर्गः (८। ३)
वि-स्तॄ+(भावे) घञ्=विस्तारम् (१३। ३०)
विज्+(भावे) घञ्=वेगम् (५। २३)

'कर्मणि' घञ्

अभिमन्+(कर्मणि) घञ्=अभिमानः (१६। ४)
आ-हृ+(कर्मणि) घञ्=आहारः (१७। ७)
आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
कम्+णिच्=कामि+(कर्मणि) घञ्=कामः (२। ६२)
भुज्+(कर्मणि) घञ्=भोगाः (५। २२)
मन्त्र्+(कर्मणि) घञ्=मन्त्रः (९। १६)
युज्+(कर्मणि) घञ्=योगः (२। ४८)
समत्वं योग उच्यते।
लभ्+(कर्मणि) घञ्=लाभम् (६। २२)

'क्त'-'ल्युट्' प्रत्यय

४९४ नपुंसके भावे क्तः ३। ३। ११४॥

क्लीबत्वविशिष्टे भावे कालसामान्ये क्तः स्यात्।
नपुंसकलिङ्ग भावमें धातुसे क्त प्रत्यय होता है।

४९५ ल्युट् च ३। ३। ११५॥

नपुंसके भावे ल्युट् स्यात्।
नपुंसकलिङ्ग भावमें धातुसे 'ल्युट्' प्रत्यय भी होता है।
अधि-स्था+(अधिकरणे) 'ल्युट्'=अधिष्ठानम् (३। ४०)
इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
अप-उह्+(भावे) ल्युट्=अपोहनम् (१५। १५)
सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
अभि-उद्-स्था+(भावे) ल्युट्=अभ्युत्थानम् (४। ७)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

ई+(करणे) ल्युट्=अयनेषु (१। ११)
कृ+(करणे) ल्युट्=करणम् (१८। १४)
घ्रा+(करणे) ल्युट्=घ्राणम् (१५। ९)
जीव+(भावे) ल्युट्=जीवनम् (७। ९)
ज्ञा+(कर्मणि) ल्युट्=ज्ञानम् (३। ३९)
दा (दाने)+(कर्मणि) ल्युट्=दानम् (१०। ५)
ध्यै=ध्या+(भावे) ल्युट्=ध्यानम् (१२। १२)
नि–धा+(अधिकरणे) ल्युट्=निधानम् (११। १८)
परि–त्रै=त्रा=(भावे) ल्युट्=परित्राणाय (४। ८)
प्र–मा+(भावे) ल्युट्=प्रमाणम् (३। २१)
भुज्+(कर्मणि) ल्युट्=भोजनम् (१७। १०)
मृ+(भावे) ल्युट्=मरणात् (२। ३४)
राध+(भावे) ल्युट्=राधनम् (७। २२)
वच्+(कर्मणि) ल्युट्=वचनम् (१८। ७३)
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।
वि–ज्ञा+(कर्मणि) ल्युट्=विज्ञानम् (१८। ४२)

'शानच्' प्रत्यय

आ–पॄ=पूरि+(कर्मणि) शानच्=आपूर्यमाणम् (२। ७०)
कृ+(कर्मणि) शानच्=क्रियमाणानि। (१३। २९)

'क्तिन्' प्रत्यय

४९६ स्त्रियां क्तिन् ३। ३। ९४॥

स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात्।

स्त्रीलिङ्गमें धातुसे भावमें क्तिन् प्रत्यय होता है।

आ–वृत्+(भावे) क्तिन्=आवृत्तिम् (८। २३)

कृत्+(भावे) क्तिन्=कीर्तिः (१०। ३४)

क्षम्+(भावे) क्तिन्=क्षान्तिः (१८। ४२)

गम्+(भावे) क्तिन्=गतिः (४। १७)

गहना कर्मणो गतिः।

ग्लै=ग्ला+(भावे) क्तिन्=ग्लानिः (४। ७)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

तुष्+(भावे) क्तिन्=तुष्टिः (१०। ५)

तृप्+(भावे) क्तिन्=तृप्तिः (१०। १८)

दृश्+(कर्मणि) क्तिन्=दृष्टिम् (१६। ९)

धृ+(भावे) क्तिन्=धृतिः (१३। ६)

नि-वृत्+(भावे) क्तिन्=निवृत्तिम् (१६। ७)

नी+(भावे) क्तिन्=नीतिः (१०। ३८)

नीतिरस्मि जिगीषताम्।

प्र-कृ+(भावे) क्तिन्=प्रकीर्त्या (११। ३६)

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।

प्र-कृ+(कर्मणि) क्तिन्=प्रकृतिः (७। ४)

प्र-वृत्+(भावे) क्तिन्=प्रवृत्तिः (१४। १२), प्रवृत्तिम् (११। ३१)

प्री+(भावे) क्तिन्=प्रीतिः (१। ३६)

भज्+(भावे) क्तिन्=भक्तिः (१३। १०)

भू+(भावे) क्तिन्=भूतिः (१८। ७८)

मन्+(कर्मणि) क्तिन्=मतिः (६। ३६)

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।

वि-भू+(भावे) क्तिन्=विभूतिम् (१०। ७)

'अच्' प्रत्यय

४९७ एरच् ३। ३। ५६

इवर्णान्तादच् स्यात्।

इवर्णान्त धातुसे 'अच्' प्रत्यय होता है।

निस्-चि+(भावे) अच्=निश्चयम् (१८। ४), निश्चयेन (६। २३)।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।

प्र-जन्+णिच्=जनि+(कर्तरि) अच्=प्रजनः (१०। २८)

प्र-नी+(भावे) अच्=प्रणयेन (११। ४१)

प्र-ली+(भावे) अच्=प्रलयः (७। ६)

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।

भी+(अपादाने) अच्=भयम् (१०। ४)

भू+(कर्तरि) अच्=भवः (१०। ४)

वि-जि+(भावे) अच्=विजयः (१८। ७८)

वि-स्मि+(भावे) अच्=विस्मयः (१८। ७७)

'अप्' प्रत्यय

४९८ ॠदोरप् ३। ३। ५७॥

ॠवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाप् स्यात्।

ॠवर्णान्त तथा उवर्णान्त धातुसे 'अप्' प्रत्यय होता है। यथा उद्-भू+(भावे) अप्=उद्भवः (१०। ३४)

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।

नि-ग्रह+(भावे) अप्=निग्रहः (३। ३३), निग्रहम् (६। ३४)

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।

परि-ग्रह्+(कर्मणि) अप्=परिग्रहम् (१८। ५३)

प्र-नु+(कर्मणि) अप्=प्रणवः (७। ८)

प्रणवः सर्ववेदेषु।

प्र-भू+(भावे) अप्=प्रभवः (७। ६), प्रभवम् (१०। २)

मद्+(भावे) अप्=मदम् (१८। ३५)

वृष्+(भावे) अप्=वर्षम् (९। १९)

तपाम्यहमहं वर्षम्।

वश+(भावे) अप्=वशम् (६। २६)

वि-स्तॄ+(भावे) अप्=विस्तरः (१०। ४०)

४९९ आङि युद्धे ३। ३। ७३॥

आङुपसर्गपूर्वकात् युद्धेऽर्थे ह्वधातोरप् स्यात्।

आङ् उपसर्गपूर्वक युद्ध अर्थमें ह्व धातुसे अप् प्रत्यय होता है।

आ-ह्वे+(अधिकरणे) अप्=आहवे (१। ३१) यथा—

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे।

'नङ्' प्रत्यय

५०० यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३। ३। ९०॥

एभ्यो नङ् स्यात्।

यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ् एवं रक्ष् इन धातुओंसे 'नङ्' प्रत्यय होता है। यथा—

परि-प्रच्छ्+(भावे) नङ्=परिप्रश्नेन (४। ३४)

प्र-यत्+(भावे) नङ्=प्रयत्नात् (६। ४५)

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥

यज्+(कर्मणि) नङ्=यज्ञः (३। १४)

यज्ञः कर्मसमुद्भवः।

'ष्ट्रन्' प्रत्यय

५०१ दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ३। २। १८२॥

दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् करणेऽर्थे।

'दाप्' आदि धातुओंसे 'ष्ट्रन्' प्रत्यय करण अर्थमें होता है।

पत्+(करणे) 'ष्ट्रन्'=पत्रम् (९। २६)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

'इत्र' प्रत्यय

५०२ पुवः संज्ञायाम् ३। २। १८५॥

सञ्ज्ञायां पुञ् धातोः इत्रः स्यात्।

'पुञ्' धातुसे करण अर्थमें संज्ञावाची 'इत्र' प्रत्यय होता है। यथा—
नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। (४। ३८)

'युच्' प्रत्यय

५०३ ण्यासश्रन्थो युच् ३। ३। १०७॥

ण्यन्तेभ्य आस्धातोः श्रन्थेश्च युच् स्यात्।

ण्यन्त, आस् और श्रन्थ् धातुसे 'युच्' प्रत्यय होता है।

५०४ आतो युच् ३। ३। १२८॥

अकारान्ताद्धातोर्युच् स्यात्। खलोऽपवादः।

ईषद् आदि उपपदमें रहते अकारान्त धातुसे 'युच्' प्रत्यय होता है।
यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
ज्वल्+युच्=ज्वलनम् (११। २९)
चित्=चेति+(भावे) युच्=चेतना (१०। २२)
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।
दुर्-युध्+(कर्मणि) युच्=दुर्योधनः (१। २)
परि-देव्+(भावे) युच्=परिदेवना (२। २८)
भू-भावि (णिच्)+(भावे) युच्=भावना (२। ६६)
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।

'खल्' प्रत्यय

५०५ ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३। ३। १२६॥

एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् स्यात्।

ईषद् आदियोंके उपपद होनेपर धातुसे 'खल्' प्रत्यय होता है। यथा—
दुर्-आ-सद्+(कर्मणि) खल्=दुरासदम् (३। ४३)
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।

दुर्-नि-ग्रह्+(कर्मणि) खल्=दुर्निग्रहम् (६। ३५)

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

दुर्-निर्-ईक्ष्+(कर्मणि) खल्=दुर्निरीक्ष्यम् (११। १७)

पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्तात्।

दुस्-पॄ=पूरि (णिच्)+(कर्मणि) खल्=दुष्पूरम् (१६। १०), दुष्पूरेण (३। ३९)।

दुस्-प्र-आप्+(कर्मणि) खल्=दुष्प्रापः (६। ३६)

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।

'अङ्' प्रत्यय

५०६ षिद्भिदादिभ्योऽङ् (३। ३। १०४)

षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च स्त्रियामङ्।

षकारेत्सञ्ज्ञक एवं भिदादिगणपठित धातुओंसे अङ् प्रत्यय होता है।

उप-मा+(भावे) अङ्=उपमा (६। १९)

कृप+(भावे) अङ्=कृपया (१। २८)

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।

क्षम्+(भावे) अङ्=क्षमा (१०। ४)

चिन्त्+णिच्=चिन्ति+(भावे) अङ्=चिन्ताम् (१६। ११)

चेष्ट्+(भावे) अङ्=चेष्टाः (१८। १४)

जॄष्+(भावे) अङ्=जरा (२। १३)

दय्+(भावे) अङ्=दया (१६। २)

नि-स्था+(भावे) अङ्=निष्ठा (३। ३)

पीड्+णिच्=पीडि+(भावे) अङ्=पीडया (१७। १९)

प्रति-स्था+(भावे) अङ्=प्रतिष्ठा (१४। २७)

प्र-भा+(भावे) अङ्=प्रभा (७। ८)

प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।

भाष्+(भावे) अङ्=भाषा (२। ५४)

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।

५०७ इच्छा ३। ३। १०१॥

इषेर्भावे शो यगभावश्च निपात्यते।

इष् धातुसे भावमें श प्रत्यय यक् प्रत्ययका अभाव और इच्छा आदेश निपातन होता है।

इष्+(भावे) शः=इच्छा (१३। ६)

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥

'क्विप्' प्रत्यय

५०८ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् ३। २। १७॥

एभ्यः क्विप् स्यात्।

भ्राज् आदि धातुओंसे क्विप् प्रत्यय होता है। यथा—

भास्+(भावे) क्विप्=भाः। (११। १२)

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥

'क्यप्' प्रत्यय

५०९ व्रजयजोर्भावे क्यप् ३। ३। ९८॥

व्रजयजोः भावे क्यप् स्यात्।

व्रज् और यज् धातुसे भावमें क्यप् प्रत्यय होता है।

यज्+(भावे) क्यप्=इज्यया। (११। ५३)

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

इति कृदन्ताः





गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : २३३६९९७

Code 2042